



# जिन हर्षगणि के वस्तुपाल चरित में चित्रित समाज

*(Society depicted in the Vastupalcarita of Jinharsa Gani)*

Dissertation Submitted for the Degree of

Master of Philosophy

in

Sanskrit

BY :

*BEENU AGARWAL*

Under the Supervision of :

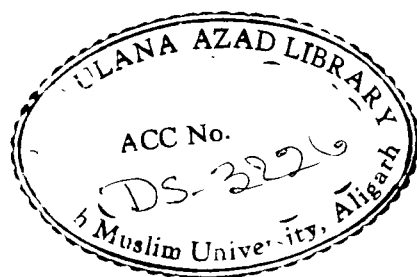
**Dr. Satya Prakash Sharma**

DEPARTMENT OF SANSKRIT

ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY, ALIGARH (INDIA)

**1998**

TRIM 320-03



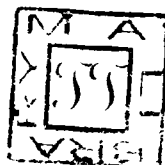
  
CHECKED-2002

16 AUG 2003



DS3127


Fed In Computer

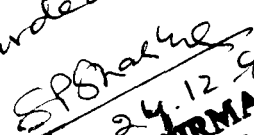


Prof. Satya Prakash Sharma  
Chairman,  
Department of Sanskrit,  
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY  
ALIGARH.

December 16, 1998

This is to certify that the dissertation entitled  
"Jinahaṛṣa Gaṇi Ke Vastupalācarita men citrita Samāja "  
submitted for the award of master of Philosophy Degree in  
Sanskrit by Miss. Beenu Agarwal is an original work and the  
result of her own efforts, and the candidate has fulfilled  
all the conditions laid down in the ordinances on this  
behalf.

  
( .. S.P. Sharma )  
Supervisor

Forwarded  
  
24.12.98  
**CHAIRMAN**  
Department of Sanskrit  
ALIGARH  
24.12.98

## प्राक्कथन

सभी भूखण्डों एवं कालखण्डों में उत्पन्न हुए मानवीय चिन्तन विश्व की सम्मिलित धरोहर होती है । भारतीय भूमि चिन्तन वैशिष्ट्य के लिए विशेष रूप से उर्वरा है । सभी विचारों एवं मतों के प्रति न केवल सहिष्णुता अपितु सम्मान इस धरा की महती विशेषता है । यही कारण है इस देश में बौद्ध, जैन आदि संस्कृतियों उत्पन्न हुईं अपितु फली-फूली भी । जैन धर्म इसी संस्कृति का एक अंग है । इस संस्कृति से सम्बद्ध विभिन्न साहित्य भी लिखा जाता रहा है । यह साहित्य तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रकाश डालता है । इसी क्रम में वस्तुपालचरितम् 15 वीं शताब्दी में रचित एक महती रचना है । इसका नायक जैन धर्मालम्बी होते हुए भी अन्य धर्मों की उन्नति के लिए पर्याप्त योगदान देता है । यह ग्रन्थ तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रकाश डालता है ।

प्रस्तुत शोध में इसी ग्रन्थ में चित्रित समाज का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । इस प्रबन्ध को विषय वस्तु के आधार पर आठ अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है ।

प्रथम अध्याय में पूर्व मध्यकाल के जैन एवं हिन्दुओं के परस्पर सम्बन्ध, द्वितीय में नायक वस्तुपाल को उद्देश्य करके उसके समय में और परवर्ती काल में लिखे गये ग्रन्थों की समीक्षा तथा तृतीय अध्याय में जैन धर्म के सम्प्रदायों का विवेचन है । जैन चार संघों में विभक्त है — श्रवण , श्रमणी, श्रावक एवं श्राविका । चतुर्थ अध्याय में इसी चतुस्रंघ पर एवं पंचम में तत्कालीन समाज की वर्ण व्यवस्था, रीतिरिवाज आदि पर चर्चा की गयी है । षष्ठ अध्याय में मन्दिर पूजा, सप्तम में वस्तुपाल की विद्वत मण्डली एवं उसका साहित्यिक योगदान तथा अष्टम अध्याय में वस्तुपाल द्वारा बनवाये गये भवनों, मन्दिरों और चैत्यों आदि की वस्तुकला पर आलोक डाला गया है । अन्त में उपसंहार के रूप में सम्पूर्ण प्रबन्ध का सार है तथा इस विषय पर भविष्य में होने वाली शोधों की सम्भावना की ओर संकेत किया गया है ।

प्राक्कथन के समाप्त करने से पूर्व पूज्य गुरुजनों एवं इष्ट मित्रों तथा अन्य शुभ चिन्तकों के प्रति आभार प्रकट न करना कृतघ्नता होती । जिन्होंने "परोपकाराय सतां विभूतयः" को चरितार्थ करते हुए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुझे प्रेरणा अथवा सहायता प्रदान की ।

सर्वप्रथम मैं पूज्य गुरुवर प्रो० श्री सत्यप्रकाश शर्मा के प्रति अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके वात्सल्य पूर्ण योग्य निर्देशन में यह शोध सम्पन्न हुआ ।

मैं पूज्य गुरुवर डॉ० श्री रामुल राजेश्वर शर्मा के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे प्रस्तुत शोध का विषय सुझाया और आलोच्य तथा संदर्भ ग्रन्थों को प्रस्तुत कराया ।

मैं अपने मित्र एवं सहपाठी डा० कृष्णगोपाल के प्रति ऋणी हूँ । जिन्होंने इस शोध प्रबंध को टाइप कराने में मेरी सहायता की ।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय क॰ मौलाना आजाद पुस्तकालये में कार्यरत श्रीमती विजय गोविल तथा श्री राकिम भाई के प्रति मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे सन्दर्भ पुस्तकें उपलब्ध कराकर मेरा कार्य सुगम किया ।

मैं अपनी माता श्रीमती प्रभा देवी एवं पिता श्री सुरेश कुमार के प्रति शतशः कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया ।

मैं अपने श्वसुर श्री देवीशरण गुप्ता, सास श्रीमती कमलेश गुप्ता एवं पति श्री राजीव गुप्ता के प्रति अतिशय आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा एवं सहयोग के द्वारा ही यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हुआ ।

इतिशुभम्

विद्वज्जनकृपाकांक्षिणी  
बीजू अ. गुप्ता

## विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन—

प्रथम अध्याय :	पूर्व मध्यकाल में जैन और हिन्दू	1-4
द्वितीय अध्याय :	संस्कृत साहित्य में उपलब्ध वस्तुपाल का जीवन वृत्त	8-27
	विषय प्रवेश	
	समकालीन ग्रंथः	
	कीर्ति कौमुदी	
	धर्माभ्युदय	
	सुकृत संकीर्तन	
	हम्मीरमदमदन	
	प्रशस्तियाँ :	
	सुकृतकीर्तिकल्लोनी	
	स्तम्भतीर्थ पर उपाश्रम की प्रशस्ति	
	वस्तुपाल स्तुति	
	वस्तुपाल - तेजपाल प्रशस्ति	
	नरचन्द्रसूरी की वस्तुपाल प्रशस्ति	
	नरेन्द्रप्रभसूरी की वस्तुपाल प्रशस्तियाँ	
	यशोवीर की वस्तुपाल प्रशस्ति	
	अरिसिंह की वस्तुपाल प्रशस्ति	
	आबू प्रशस्ति	
	परवर्ती ग्रन्थः	
	वसन्तविलास	
	प्रबन्धवलि	
	प्रबन्धचिन्तामणि	
	प्रबन्धकोश	
	विधिधर्तीर्थकल्प	
	वस्तुपालचरितं	

तृतीय अध्याय :	जैनों के सम्प्रदाय
	श्रमण धर्म के प्रवर्तक
	वस्तुपालचरितं में जैन तीर्थंकरों का उल्लेख
	जैन सम्प्रदाय:
	दिगम्बर सम्प्रदाय
	श्वेताम्बर सम्प्रदाय
	यापनीय सम्प्रदाय
	कूर्चक सम्प्रदाय
	अर्द्धस्फालक सम्प्रदाय
	वस्तुपालचरितं में वर्णित जैन सम्प्रदाय

चतुर्थ अध्याय :	चतुर्विध संघ
	सामान्य परिचय
	श्रावक
	श्राविका
	श्रमण
	श्रमणी
	वस्तुपालचरितम् में चतुर्विध संघ का उल्लेख

पञ्चम अध्याय :	समाज चित्रण
	वर्ण व्यवस्था
	पारिवारिक जीवन
	स्त्रियों की स्थिति
	राज्य व्यवस्था
	न्याय एवं दण्ड व्यवस्था
	आर्थिक स्थिति
	लोक विश्वास
	गुरु का महत्त्व
	अतिथि सत्कार

जीवन की मूल्यवत्ता

सामाजिक कल्याण के लिए राज्य की प्रतिबद्धता

शकुनों में विश्वास

सन्तान

षष्ठम अध्याय :

मन्दिर पूजा

62-64

सप्तम अध्याय :

शिक्षा, शास्त्रीय परिचर्चा एवं साहित्य

65-71

महात्मा वस्तुपालन का साहित्यिक परिवेश

विद्वान्, रचना एवं शास्त्रीय परिचर्चों

सोमेश्वर

हरिहर

नानाक

यशोवीर

सुभट

अरिसिंह

विजयसेनसूरि

उदयप्रभसूरि

नरचन्द्रसूरि

नरेन्द्रप्रभसूरि

बालचन्द्रसूरि

जयसिंहसूरि

माणिक्यचन्द्रसूरि

अन्य कवि और विद्वान

वस्त्राल का परिवार एवं साहित्य

अज्ञात कवि एवं विद्वान

अष्टम अध्याय:

कला एवं शिल्प

72-74

उपसंहार

85-86

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

87-90



# प्रथम अध्याय

पूर्व मध्यकाल में  
जैन और हिन्दू

## प्रथम अध्याय

### पूर्व मध्यकाल में जैन और हिन्दू

भारतवर्ष में जैन संस्कृति एवं हिन्दू संस्कृति में विभिन्न क्षेत्रों में घनिष्ठ सम्बन्ध चिरकाल से विद्यमान रहा है । इन दोनों संस्कृतियों का पारस्परिक सौहार्द भारतीय इतिहास का गौरवपूर्ण अध्याय रहा है जिसका मूल आधार गुणग्रहण की उदात्त भावना थी । यही कारण था कि मतभेदों के प्रकट होते रहने पर भी मनो में भेद नहीं हुआ । गुणग्रहण के प्रश्न पर ये सदैव एक मत रही ।

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्णिम काल माना जाता है । इस समय जैन धर्म ने पूर्व पश्चिम और दक्षिण भारत को अपनी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बनाया । भारतवर्ष में हिन्दू एवं जैन सभी के मध्य धर्म का पर्याप्त समादर था । मध्यकाल में मालवा राजस्थान, उत्तरी गुजरात तथा दक्षिणी भारत के कनोटक आदि प्रदेशों में जैन धर्म का काफी सम्मान था । दक्षिण में पूर्वमध्य कालमें अनेक राजवंशों और उनके अनेक सामन्तों, मन्त्रियों और सेनापतियों ने न केवल जैन धर्म को आश्रय प्रदान किया बल्कि उसका अनुसरण भी करने लगे । इस प्रकार के तत्कालीन राजवंशों में गंग, कदम्ब, चालुक्य एवं राष्ट्रकूट प्रमुख हैं ।<sup>1</sup> कुछ राष्ट्रकूट नरेश तो पक्के जैन थे तथा उनके संरक्षण में कला एवं साहित्य की उन्नति अतीव महत्वपूर्ण है । इस युग से सम्बद्ध प्रमुख कवियों और ग्रन्थकारों की एक मण्डली थी । वस्तुपाल का साहित्यिक समूह भी इसी प्रकार की एक मण्डली थी । इस साहित्यिक मण्डली में हिन्दू एवं जैन विद्वानों का समान सम्मान था । वस्तुपाल के समूह में सोमेश्वर ब्राह्मण थे । राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष जिनसेन का भक्त था और जीवन के अन्तिम वर्षों में वह जैन हो गया था । अमोघवर्ष का समय लगभग 815 से 877 ई. था ।<sup>2</sup> दक्षिण भारत में विजय नगर के पतन के पश्चात् कई जैन सामन्त राजा थे जो अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ के समय थे । उत्तरमध्यकाल में जैन धर्म के कई प्रमुख केन्द्र थे । गुजरात में अणहिलपुर, खंभात और भडौंच, राजस्थान में भिन्नमाल प्रमुख थे । इसके अतिरिक्त जाबालिपुर, नागपुर,

---

<sup>1</sup> जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 6, पृ 9

<sup>2</sup> वही, पृ 12

जयमेरु, चित्रकूट और आघाटपुर तथा मालवा में उज्जैन, ग्वालियर और धारा नगर थे । राष्ट्रकूट नरेश अमोषवर्ष द्वारा जैन धर्म को प्रश्रय देना एवं अन्ततः उसको स्वीकार कर लेना तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता का उत्कृष्ट उदाहरण है । यह हिन्दू एवं जैनों की गुणग्राह्यता को पुष्ट करता है । उत्तरमध्यकालीनवें गुजरात में चौलुक्य और बघेल, राजस्थान में चाहमान, परमार वंश की शाखाएँ तथा मालवा और भड़ोच्च में परमार, चन्देल और कल्चुरि राजा राज्य करते थे । <sup>1</sup> जैन सचिव वस्तुपाल के राजा धवलक एक चालुक्य नरेश थे । इन शासक वंशों ने जैन धर्म और जैन समाज के साथ बहुत सहानुभूति एवं समादर का व्यवहार किया । इससे जैन साधुओं एवं श्रावकों का निर्विघ्न साहित्य निर्माण करने एवं निर्बाध तथा सौविध्यपूर्ण जीवन बिताने का सुअवसर प्राप्त हुआ । गुजरात के चौलुक्य नरेशों के संरक्षकत्व में जैन धर्म ने अपने गौरवपूर्ण दिन देखे । इस कालमें जैनों द्वारा किये गये साहित्य एवं कला के विकास से गुजरात सांस्कृतिक क्षेत्र में समृद्ध हुआ । यह उन्नति आज भी गुजरात एवं देश की सांस्कृतिक विरासत है । इस समय से गुजरात में साहित्यिक गतिविधियों का एक युग प्रारम्भ हुआ । इसका श्रेय हेमचन्द्र एवं उनके परवर्ती कवियों को है । न केवल जैन अपितु हिन्दू राजसभाओं में भी जैनाचार्यों और विद्वानों के त्यागी जीवन और उनके साथ विद्योपासना की बड़ी प्रतिष्ठा की जाती थी । राजवंश के बहुत से व्यक्ति उनका अनुयायी होना गौरव की बात समझते थे ।

मुस्लिम काल में कुछ जैन मन्दिरों को नष्ट भी किया गया परन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं थी । इस समय भी जैनाचार्यों एवं जैन श्रावकों की प्रतिष्ठा विद्यमान थी । दिल्ली का बादशाह मुहम्मद बिन तुगलक जिनप्रभसूरि का बड़ा समादर करता था । मुगल सम्राट अकबर और जहाँगीर ने आचार्य हरिविजय, शान्तिचन्द्र और भानुचन्द्र के उपदेशों से प्रभावित होकर जीव रक्षा के लिए फरमान निकाले थे । अकबर ने आचार्य हरिविजय को जगद्गुरु की उपाधि दी थी और उनके अनुरोध पर पूज्यूसण के जैन वार्षिकोत्सव के समय उन स्थानों में प्राणीहिंसाप्रतिषेध की थी, जहाँ जैन लोग रहते थे ।<sup>2</sup>

---

<sup>1</sup> जैन साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग 6, पृ 9

<sup>2</sup> वही, पृ 10

गुप्तकाल से लेकर उत्तरमध्यकाल तक भारतीय धार्मिक परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुके थे । गुप्त वंश के शासक प्रायः वैष्णव थे परन्तु वे बड़े सहिष्णु थे तथा अन्य धर्मों को भी संरक्षण प्रदान करते थे । गुप्तराज्यों के संरक्षण में बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का अच्छा प्रचार था । नालन्दा और बलभी बौद्ध धर्म के नवीन केन्द्र बन रहे थे । जैन धर्म भी पर्याप्तरूप से विकसित था । पाँचवी शताब्दी में देवर्घिगणि क्षजाश्रमव ने जैन आगमों का संकलन किया था । इस युग की विशेषता यह थी कि इसमें विविध धर्मों से आदान प्रदान प्रारम्भ हो गया था । जैन तीर्थंकरों एवं महात्मा बुद्ध को हिन्दू अवतारों में सम्मिलित किया जा चुका था । उस समय धार्मिक जीवन में विधर्मी तत्वों का प्रवेश होने लगा था । एक ही कुटुम्ब अथवा राजवंश में विभिन्न धर्मों की एक साथ उपासना होने लगी थी । हिन्दू धर्म में भागवत, शक्त और शैव सम्प्रदायों तथा बौद्ध धर्म में तान्त्रिक धर्म प्रविष्ट हो चुका था । शैव और वैष्णव धर्मों के प्रभाव के कारण तीर्थंकरों को कर्ता माना जाने लगा था और उनके लिए स्तोत्रों की रचना होने लगी थी । विविध पर्वों, तीर्थों एवं मन्त्रों का महत्व बढ़ रहा था । ससंघ तीर्थयात्रा को भी महत्व दिया जा रहा था और श्रमणों द्वारा वसतिवास किये जाने के कारण जैन संघों में अनेक मतभेद तथा आचार सम्बन्धी शिथिलताएँ आने लगीं थी । पूर्व मध्य काल में सामाजिक जड़ता बढ़ने लगी थी । भारतीय समाज जाति प्रथा से जकड़ता जा रहा था । धार्मिक एवं पारम्परिक मान्यताएँ दृढ़ हो रही थी । उत्तममध्यकाल आते आते समाज अनेक जातियों और उपजातियों में बँटने लगा था । प्रगतिशीलता, समन्वय एवं सहिष्णुता का स्थान स्थिरता, रुढ़िवादिता एवं कठोरता ने ले लिया था ।

यद्यपि जैन धर्म और हिन्दू धर्म का मूल कथ्य एक ही था परन्तु स्थूल रूप से देखने पर उनकी कार्यपद्धति कहीं-कहीं एक दूसरे के विपरीत हो गयी थी । अतः विरोध होना स्वाभाविक था । कुछ स्तरों में विरोध बहुत अधिक बढ़ गया, यहाँ तक कहा जाने लगा—

'हस्तिनाताड्ययमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ।

यह तथ्य दोनों धर्मों की पारस्परिक कट्टरता की पराकाष्ठा है ।

वस्तुपालचरितम् में दोनों धर्मों के बीच कट्टरता का लेशमात्र भी दिखायी नहीं देता । इसमें दोनों के बीच सम्बन्ध मधुर सौहार्दपूर्ण एवं घनिष्ठ हैं । दोनों ही अपने-अपने धर्मों को समानान्तर रूप से पल्लवित कर रहे हैं । पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करते समय तनिक भी यह विचार नहीं किया जाता कि यह हिन्दू है अथवा जैन । वस्तुपाल धवलकपुर के मंत्री हैं जो एक पक्के जैन हैं तथा उनके आश्रयदाता वीरधवल हिन्दू हैं । वस्तुपाल अत्यन्त शक्तिशाली एवं राजा से सम्मानित मन्त्री हैं । राजा उन्हें धार्मिक कार्यों के सञ्चालन की न केवल स्वतन्त्रता प्रदान की अपितु राजकोश से अपार धन खर्च करने की भी स्वतन्त्रता दी थी । वस्तुपाल द्वारा अनेक जैन मन्दिरों और चैत्यों का निर्माण कराया गया । संघयात्रा का आयोजन भी किया जो जैन संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार करने का एक बड़ा प्रयास था । कोई भी संकुचित वृत्ति वाला राजा मन्त्री के इस प्रयास को अपनेधर्म की उन्नति के मार्ग में बाधक समझ सकता है परन्तु राजा धवलक ने वस्तुपाल के इस कार्य को पूर्ण सहयोग और समर्थन प्रदान किया ।

आलोच्यग्रन्थ में दोनों धर्मों के समन्वय का एक मुख्य बिन्दु यह भी है कि राजा के हिन्दू होने पर भी मुख्यरूप से जैन धर्म राज्य का धर्म है, जबकि हिन्दू धर्म का स्थान गौण है । सामान्यतया इतिहास में यह देखा गया है कि जो राजा का धर्म होता है वही राज्य का धर्म होता है । एक स्थिति यह भी हो सकती है कि राजा धर्म निरपेक्ष रहा हो । इस दशा में वह जैन धर्म की प्रगति का मूक साक्षी हो सकता है परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि न केवल राजा अपितु उसका कुलगुरु सोमेश्वर भी वस्तुपाल का प्रशंसक एवं उसके गुणों का ग्राहक है । सोमेश्वर ब्राह्मण कुलगुरु है फिर भी वह वस्तुपाल को वीरधवल से मिलवाता है और राजा से उसको मन्त्रिपद देने का आग्रह करता है तथा स्वयं उसकी प्रतिभूति लेता है ।<sup>1</sup>

किसी शुभ कार्यों के निमित्त जाते समय ब्राह्मण लोग मन्त्री को आशीर्वाद देते हैं ।<sup>2</sup> यह इस बात का प्रतीक है कि ब्राह्मण वस्तुपाल के जैन होने पर भी किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते । वस्तुपाल का जो

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितम्, 1 263

<sup>2</sup> वही, 1 273

साहित्यिक संघ है उसमें हिन्दू और जैन दोनों के अनुयायियों को समान प्रतिष्ठा एवं सुविधाएँ उनकी व्यक्तिगत योग्यताओं के आधार पर प्रदान की गयी है ।

कुलगुरु ब्राह्मण सोमेश्वर स्वयं शाक्त और शैव धर्मों का कट्टर अनुयायी होते हुए भी जैन मन्दिरों की प्रशंसा में रचनायें करता है और वीरधवल की प्रशंसा में श्लोकों की रचना करता है ।<sup>1</sup> धार्मिक सहिष्णुता का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण अन्य क्या हो सकता है ?

सचिव वस्तुपाल संघयात्रा में विशालजन समूह के साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर जाता है । उसके साथ जो जन समूह है जैन धर्मानुयायी हैं । परन्तु वस्तुपाल अपने हिन्दू राजा धवलक के विश्वास का आदर करने के निमित्त शिवजी की उपासना करने के लिए जाता है।<sup>2</sup> यह धार्मिक सामंजस्य का एक और ज्वलन्त उदाहरण है ।

वस्तुपाल द्वारा पूजा किये जाने पर हिन्दू देवी-देवताओं का भी आह्वान किया जाता है । वह इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण , कुबेर, वायु, शिव आदि को भी आहूत करता है । यथा—

श्रीमान् शचीशोऽग्नियुतो यमोऽपि, श्रीनैऋतः श्रीवरुणः सवायुः ।

कुबेर ईशः शिवतातयः स्युर्नागोऽधुना ब्रह्मसखश्च संघे ।।<sup>3</sup>

शिव के स्वरूप में परिवर्तन करते हुए आलोच्य ग्रन्थ में सामञ्जस्य का एक महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी प्रयास किया गया है । इस स्थल पर शिव के स्वरूप की जैन धर्म के आलोक में व्याख्या प्रस्तुत की गई है । इस परिवर्तन का कारण शैव धर्म के अनुसार भी मद्य एवं मांस के सेवन को गर्हित सिद्ध करना है । सामान्यतया हिन्दू धर्म के अनुसार मांसाहार को निन्दनीय तो माना नहीं जाता प्रत्युत् कुछ धार्मिक अनुष्ठानों में तो मांस का प्रयोग अपरिहार्य हो जाता है यथा—यज्ञ में हिंसा आवश्यक है तथा मेधाजनन संस्कार में बच्चे को बकरे का मांस

<sup>1</sup> इसी के सातवें अध्याय में ।

<sup>2</sup> वस्तुपालचरितम्, 6.540 - 548

<sup>3</sup> वही, 6.319

खिलाने का प्रावधान है ।<sup>1</sup> हिन्दू धर्म में शिव का जो स्वरूप है उसमें मांस के सेवन को निषिद्ध नहीं किया गया है परन्तु मांसाहार के निषेध के जैन सिद्धान्त का वस्तुपालचरित में सम्यक् परिपाक देखा जा सकता है ।<sup>2</sup> इसमें कहा गया है कि जो व्यक्ति 100 वर्ष तक अश्वमेध यज्ञ करता है वह उस व्यक्ति के समान फल प्राप्त करता है जो मांसाहार नहीं करता ।

यथा—

वर्षे वर्षऽश्वमेधेन, यो यजेत शतं समाः ।

मांसानि च न खादेत, तयोस्तुल्यं स्मृतं फलम् ।।<sup>3</sup>

अर्थात् व्यक्ति यज्ञ आदि कर्मकाण्ड बाहुल्य क्रिया करने के स्थान पर केवल मांस भक्षण का परित्याग करके बृहत् फल को प्राप्त कर सकते हैं । जैन धर्म के इस मांस निषेध के सिद्धान्त के प्रकाश में वस्तुपालचरितम् में शिव का विवेचन करना आवश्यक था अन्यथा सामञ्जस्य के प्रयास को आघात लग सकता था अतः यह आवश्यक था कि शिव भक्ति को मांसाहार के विरुद्ध प्रतिपादित किया जाये । जो लोग शिव भक्ति में मांस को आवश्यक मानते हैं— उनके ऊपर कटाक्ष करते हुए वस्तुपालचरित में कहा गया है कि कहाँ मांस और कहाँ शिव की भक्ति, कहाँ मद्यसेवक और कहाँ शिव की अर्चना । शंकर तो मद्यपान के प्रयोग से दूर ही निवास करते हैं अर्थात् मद्यमांस सेवन का शंकर से कोई सम्बन्ध नहीं है । जो व्यक्ति मद्यमांस सेवन में शंकर को प्रसन्न करना चाहते हैं वे भ्रमित हैं । दान, होम, पूजा, गुरु, भक्ति मांसाहारी व्यक्ति के लिए निरर्थक है जहाँ जीव है वहीं शिव है । शिव और प्राणियों में कोई भेद नहीं है अतः शिव भक्ति की कामना करने वाले को हिंसा नहीं करनी चाहिये ।

अहिंसा जैन धर्म का एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके विषय में जैन धर्मानुयायी कभी भी शिथिलता नहीं अपना सकते अतः यह उनका सर्वोत्कृष्ट धार्मिक बिन्दु है । सामञ्जस्य का प्रयास करते समय सभी पक्षों को

<sup>1</sup> आश्वलायनश्रौतसूत्र पृ. 25

<sup>2</sup> वस्तुपालचरितम्, 5. 385-393

<sup>3</sup> वही, 5. 385

कुछ न कुछ त्यागना पड़ता है । जैन धर्म ने अहिंसा को छोड़कर अन्य अनेक बिन्दुओं पर हिन्दू धर्म को मान्यता प्रदान की और उसका सम्मान किया । हिन्दुओं ने भी जैन धर्म की इस अहिंसावादिता को स्वीकार किया और कालान्तर में हिन्दू समाज में भी मांसाहार को गर्हित माना जाने लगा । आज भी ब्राह्मण एवं वैश्य समाज में मांसाहार को निन्दनीय माना जाता है ।

बौद्ध धर्म के विपरीत जैन धर्म में हिन्दू धर्म के प्रबल और कटुतम विरोध का मार्ग नहीं अपनाया गया । बौद्धधर्म अपने विरोधी स्वभाव के कारण अपनी जन्मभूमि से प्रायः लुप्त हो गया परन्तु जैन धर्म हिन्दूधर्म के समानान्तर पल्लवित होता रहा । अद्यावधि जैन समाज एवं हिन्दू समाज में वैवाहिक सम्बन्ध भी किये जाते हैं । इस प्रकार जैनियों को हिन्दू समाज की एक शाखा ही के साथ स्मरण किया जाता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि इन दोनों ही धर्मों के सम्बन्ध प्रायः प्रत्येक काल में सौहार्दपूर्ण रहे हैं ।



# द्वितीय अध्याय

संस्कृत साहित्य में उपलब्ध वस्तुपाल  
का  
जीवन वृत्त

### संस्कृत साहित्य में उपलब्ध वस्तुपाल का जीवन-वृत्त

#### विषय प्रवेश :

वस्तुपाल 13वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गुजरात में धवलकपुर के सामन्त वीरधवल का मन्त्री था । वह एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ साहित्य एवं कला का महान संरक्षक भी था । वह जैन धर्म का अनुयायी था । उसने गुजरात में जैन धर्म की उन्नति एवं प्रसार के लिए अनेक कार्य किये । वस्तुपाल इतना लोकप्रिय था कि उसको लेकर भारत में जितना साहित्य लिखा गया उतना अब तक महाभारत और रामायण के पात्रों के अतिरिक्त किसी भी राजपुरुष या धार्मिक पुरुष को लेकर नहीं लिखा गया ।

वस्तुपाल के पू्वज गुजरात देश की राजधानी अणहिल्लपत्तन नामक नगर में प्राग्वाट वंश<sup>1</sup> के थे । प्राग्वाट वंश में चण्डप<sup>2</sup> चौलुक्य राजा का मन्त्री हुआ । चण्डप का पुत्र चण्डप्रसाद<sup>3</sup> था । चण्डप्रसाद का पुत्र सोम<sup>4</sup> सिद्धराज राजा का कोषाध्यक्ष हुआ । सोम का पुत्र अश्वराज,<sup>5</sup> वस्तुपाल का पिता सिद्धराज राजा जयसिंह का मन्त्री था । वस्तुपाल की माता कुमारदेवी विधवा थीं, उनका दूसरा विवाह अश्वराज से हुआ था ।<sup>6</sup> वस्तुपाल की सात बहिनें और दो भाई थे ।<sup>7</sup> बड़े भाई मल्लदेव की युवावस्था में मृत्यु हो गई थी । वस्तुपाल

<sup>1</sup> वस्तुपाल चरितं, 1 19

<sup>2</sup> वही, 1 22

<sup>3</sup> वही, 1.24

<sup>4</sup> वही, 1.26

<sup>5</sup> वही, 1 29

<sup>6</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 26

<sup>7</sup> वस्तुपाल चरितं, 1 65, 74

का अनुज तेजपाल था । बालचन्द्र के वसन्तविलास काव्य के अनुसार वस्तुपाल का जन्म 1193 ई में हुआ था ।<sup>1</sup> वस्तुपाल की दो पत्नियाँ ललिता देवी और सौख्यलता थीं ।<sup>2</sup> तेजपाल की पत्नी का नाम अनुपमा देवी था,<sup>3</sup> जो अत्यन्त बुद्धिमती थी तथा दोनों भाइयों को उनके कार्यों में सलाह देती थी ।

वस्तुपाल के गच्छ के विषय में ज्ञात नहीं हुआ कि ये किस गच्छ के थे ; लेकिन आपके गुरु विजयसेनसूरि<sup>4</sup> और गुरुभाई उदयप्रभसूरि नागेन्द्रगच्छीय थे । वस्तुपाल श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समर्थक थे ।<sup>5</sup> पिता की मृत्यु के पश्चात् वस्तुपाल परिवार सहित सुंहालकपुर से मण्डली नगर<sup>6</sup> में आकर रहने लगे । माँ की मृत्यु के पश्चात् शक्रुञ्जय की तीर्थयात्रा से लौटते समय आपकी मुलाकात धवलकपुर में राजा वीरधवल के पुरोहित सोमेश्वर से हुई ।<sup>7</sup> 1220 ई में सोमेश्वर की सलाह से वीरधवल ने वस्तुपाल एवं तेजपाल को अपना मंत्री नियुक्त किया ।<sup>8</sup> वस्तुपाल को स्तम्भतीर्थ का गवर्नर नियुक्त किया गया ।<sup>9</sup> वसन्तविलास के अनुसार वस्तुपाल

<sup>1</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 27

<sup>2</sup> Ibid ; वस्तुपाल चरितं, 1 77-78

<sup>3</sup> वस्तुपाल चरितं, 1 79

<sup>4</sup> वही, 6 4

<sup>5</sup> इसी शोध का तृतीय अध्याय

<sup>6</sup> वस्तुपाल चरितं, 1.85

<sup>7</sup> वही, 1 147-148

<sup>8</sup> वही, 1.242 :

Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 28

<sup>9</sup> वही, 1 265

का निधन 1240 ई. में हुआ ।<sup>1</sup>

वस्तुपाल विचक्षण राजनीतिज्ञ था । उसका धवलक और अणहिल्लपत्तन के दरबार में बहुत अधिक प्रभाव था । उसने मन्त्री बनते ही गुजरात राज्य को आर्थिक और राजनीतिक रूप से सृष्ट बनाया । उसने शासन में अनेक सुधार किये, न्याय प्रणाली में परिवर्तन किये । मात्स्यन्याय को दूर किया -

अबलः सबलेनाहो, ग्रस्यते यद्दुरात्मना ।

मात्स्यो न्यायोऽयमद्यापि, मयि सत्यपि वर्तते ॥<sup>2</sup>

उसने अधिकारियों के मध्य फैले हुए भ्रष्टाचार को दूर किया । वह उच्च अधिकारियों के खातों का निरीक्षण करता था । वह भ्रष्ट अधिकारी से 2100 ड्रम्म जुर्माना लेता था-

दण्डयित्वा बृहद्द्रम्मशताना (लक्षाणा ) मेकावैशतिम् ।

विनयं ग्राह्यामास, कुशिष्यमिव सद्गुरुः ॥<sup>3</sup>

वस्तुपाल ने जनता के हित के लिए अनेक कार्य किये । उसने धमशालाएँ, वापिकायें, वाटिकायें, विद्यापीठ आदि बनवाये । लोगों को सुरक्षा दी उन्हें व्यापार के लिए प्रोत्साहित किया । जिनप्रभसूरे और राजशेखर के अनुसार वस्तुपाल का जनकार्य दक्षिण में श्रीपर्वत, पश्चिम में प्रभास, उत्तर में केदार और पूर्व में बनारस तक फैला हुआ था ।<sup>4</sup>

वस्तुपाल युद्धवीर भी था । उसने गुजरात के स्वराज्य को नष्ट होने से बचाने के लिए अपने जीवन में त्रेसठ बार युद्धभूमि में गुर्जर सैन्य का संचालन किया था ।<sup>5</sup> उनमें कुछ प्रमुख युद्ध हैं- वीरधवल राजा के

<sup>1</sup> जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 406; वस्तुपाल चरितं, 8.541

<sup>2</sup> वस्तुपाल चरितं, 4.40

<sup>3</sup> वस्तुपाल चरितं, 2.216

<sup>4</sup> विविध तीर्थ कल्प, पृ. 80 ; प्रबन्धकोश, पृ. 130

<sup>5</sup> प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें, पृ. 236

साले, वामनस्थली के राजा सांगण और चामुण्ड से, भद्रेश्वर के राजा प्रतीहार के भीमसिंह से और लाट के राजा शंख से । वस्तुपाल जब शंख को हराकर आया तब राजा का आदेश पाकर सोमेश्वर ने उसका इस श्लोक के साथ स्वागत किया—

श्रीवस्तुपाल प्रतिपक्षकाल त्वया प्रपेदे पुरुषोत्तमत्वम् ।

तीरेपि वार्द्धेरकृतेपि मात्स्ये दूरं पराजीयत येन शङ्खः ॥<sup>1</sup>

वीरधवल के शासनकाल में गुजरात पर मुस्लिम शासक योगिनीपुरी (दिल्ली) के मोजदीन ने भी आक्रमण किया था, जिसे वस्तुपाल ने अपने रणकौशल से सफलतापूर्वक खदेड़ दिया ।<sup>2</sup>

वस्तुपाल को सांस्कृतिक गतिविधियों के लिये अधिक स्मरण किया जाता है । वस्तुपाल के प्रयासों से गुजरात में संस्कृति का पुनर्जागरण हुआ । वह जैन धर्म का उपासक था । उसने जैन धर्म की उन्नति एवं प्रसार के लिए जितना हो सकता था, वह सब किया । उसके समय में जैन धर्म शिखर पर पहुँच गया था । उसने अनेक जैन मन्दिर बनवाये —

येन त्रयोदशशतानि नवीनजैनधाम्नां त्रयोदशयुतानि च कारितानि ।

भूमौ शतत्रययुतत्रिसहस्रमानं, जैनेन्द्रजीर्णसदनानि समुद्धृतानि ॥<sup>3</sup>

वस्तुपाल के आदेश पर उसके अनुज तेजपाल ने आबू पर्वत पर नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया—

वेदाष्टभानु (1284) सङ्खोत्र, वर्षे श्रीनेमिवेशमनि ।

अकारि फाल्गुने मासे, प्रतिष्ठा तेन मन्त्रिणा ॥<sup>4</sup>

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितं, 4.249 ; प्रबन्धकोश, पृ. 109

<sup>2</sup> Lit. Cir of MV, P. 31 ; वस्तुपालचरितं के सातवें प्रस्ताव में; प्रबन्ध कोश, पृ 117

<sup>3</sup> वस्तुपालचरितं, 8.644

<sup>4</sup> वही, 8.215

यह मन्दिर दिलवाड़ा के मन्दिरों के मध्य में है और वस्तुपाल के बड़े भाई लणीय की स्मृति में लुणवसतिका के नाम से प्रख्यात है ।<sup>1</sup> आबू का मन्दिर मध्ययुगीन भारत की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है । उसने इन जैन मन्दिरों पर करोड़ों रुपये व्यय किये । प्रबन्धकों के अनुसार वस्तुपाल और तेजपाल ने 18 करोड़ 96 लाख शत्रुञ्जय पर, 12 करोड़ 80 लाख गिरनार पर तथा 12 करोड़ 53 लाख आबू के मन्दिर पर व्यय किये ।<sup>2</sup>

अनेक स्थानों पर नवीन जिनालय बनवाये और पुरानों का जीर्णोद्धार कराया था । जैन मन्दिरों के अतिरिक्त सोमनाथ, भृगुक्षेत्र, शुक्लतीर्थ, वैद्यनाथ, द्वारिका, काशीविश्वनाथ, प्रयाग और गोदावरी आदि अनेक हिन्दू तीर्थ स्थानों की पूजा-अर्चना के निमित्त लाखों रुपये का दान दिया । सैकड़ों ब्रह्मशालायें और ब्रह्मपुरियाँ बनवायीं । सैकड़ों शिवालयों का जीर्णोद्धार कराया, वेदवादी ब्राह्मणों को वर्षाशन दिया । यहाँ तक कि मुसलमानों के लिए मस्जिदें भी बनवायीं और संगमरमर का एक कलापूर्ण सुन्दर तोरण बनवाकर मक्का-शरीफ भिजवाया ।<sup>3</sup> वस्तुपालचरितं के अनुसार वस्तुपाल मुस्लिम बादशाह मोजदीन की माँ के साथ हज को गया था और वहाँ उसने

<sup>1</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 37, Lit. Cir. P.27

के अनुसार वस्तुपाल के तीन भाई थे-लुणीय, मल्लदेव एवं तेजपाल । बड़े भाई लुणीय की मृत्यु बचपन में हो गई थी ।

<sup>2</sup> विविधतीर्थकल्पः, पृ. 79; प्रबन्धकोश, पृ. 129

<sup>3</sup> प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें, पृ. 236; प्रबन्धकोश, पृ. 119

द्वार पर तोरण बनवाया ।<sup>1</sup> कीर्तिकौमुदी में वस्तुपाल की प्रशंसा करते हुए कहा गया है—

नानर्च भक्तिमान्नेमौ नेमौ शंकरकेशवौ ।

जैनोऽपि यः सवेदानां दानाम्भः कुरुते करे ॥ IV. 40 ॥<sup>2</sup>

दूसरों के विश्वासों के प्रति उसकी उदारता अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी थी, जिसके लिए पुरातन प्रबन्ध संग्रह में एक श्लोक है—

बौद्धैर्बौद्धो वैष्णवैर्विष्णुभक्तः शैवैः शैवो योगिभिर्योगरङ्गः ।

जैनैस्तावज्जैन एवेति कृत्वासत्त्वाधारः स्तूयते वस्तुपालः ॥ 68 ॥<sup>3</sup>

वस्तुपाल ने 13 बार शत्रुञ्जय और गिरनार की तीर्थयात्रा की ।<sup>4</sup> यहाँ तक कि मृत्यु के समय भी वह शत्रुञ्जय की यात्रा पर था ।<sup>5</sup> वस्तुपाल के सत्कार्यों का वर्णन वस्तुपालचरित काव्य के अन्त में किया गया है ।<sup>6</sup>

<sup>1</sup> भूयसा परिवारेण, समं गत्वा स शक्तिमान् ।

पर्युपास्तिं सृज्जन्तां, हजयात्रामकारयेत् ॥

धर्मचक्रपदद्वारे, तोरणं तत्र मन्त्रिणा ।

आरासनाश्मनो दिव्यं, जगन्नेत्रोत्सवप्रदम् ॥

निवेश्य द्रुमलक्षाणि, श्रीणि तत्र व्ययं व्यधात् ।

यतः परस्य सन्तोषकृते सन्तः कृतोद्यमाः ॥ वस्तुपालचरितं, 7. 227-229

<sup>2</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 39

<sup>3</sup> Ibid.

<sup>4</sup> Ibid. P. 35

<sup>5</sup> जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 406 ; वस्तुपालचरितं का अष्टम प्रस्ताव ।

<sup>6</sup> वस्तुपालचरितं, 8. 643-681

वस्तुपाल कवि था । उसके काव्यत्व उपलब्धि के विषय में सोमेश्वर का कथन है—

विरचयति वस्तुपालश्चतुस्तयसचिवेषु कविषु च प्रवरः ।

न कदाचिदर्थहरणं श्रीकरणे काव्यकरणे वा ॥ <sup>1</sup>

उसने नरनारायणानन्द काव्य, शत्रुञ्जयमण्डन आदिनाथस्तोत्र, गिरनारमण्डन, नेमिनाथस्तोत्र, अम्बिकास्तोत्र आदि अनेक स्तोत्रों की रचना की । वस्तुपाल ने अनेक सुभाषितों की भी रचना की । उदयप्रभसूरि ने वस्तुपाल की प्रशंसा करते हुए कहा है :

पीयूषादपि पेशलाशशधरज्योत्स्नाकलापादपि

स्वस्था नूतनचूतमञ्जरिभरादप्युल्लसत्सौरभाः ।

वाग्देवीमुखसामसूक्तविश्वदोद्वारादपि प्राञ्जलाः

केषां न प्रथयन्ति चेतसि मुदं श्रीवस्तुपालोक्तयः ॥ <sup>2</sup>

कवि होने के साथ वह कवि पारखी भी था । गिरनार के शिलालेखों में 'धर्मसुनुः सरस्वत्याः ' और 'शारदाप्रतिपन्नपत्यः' कहा गया है । कीर्तिकौमुदी में उसे 'वाग्देवतासुत' कहा है । राजशेखर ने वस्तुपाल को 'सरस्वतीकण्ठाभरण'<sup>3</sup> कहा है । वह अनेक कवियों का आश्रयदाता था । उसका एक विद्यामण्डल था, जिसमें सोमेश्वर, हरिहर, नानाक पण्डित, मदन, सुभट, मंत्री यशोवीर और अरिसिंह थे । वस्तुपाल के अति सम्पर्क में अमरचन्द्रसूरि, विजयसेनसूरि, नरचन्द्रसूरि, नरेन्द्रप्रभसूरि, बालचन्द्रसूरि, जयसिंहसूरि और मणिकचन्द्रसूरि आदि कवि और विद्वान भी थे । वह धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथ लिखने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करता था । वह कवि, विद्वानों के प्रति उदार था । लगभग सम्पूर्ण भारत से विद्वान, कवि और धार्मिक पुरुष उसके समय

<sup>1</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 129, Fn.1, Abu Prasarti, V.14

<sup>2</sup> प्रबन्धकोश, पृ. 116

<sup>3</sup> विविधतीर्थकल्प : पृ. 80; प्रबन्धकोश, पृ. 111



में अणहिल्लपत्तन और धवलकपुर आये । वस्तुपाल ने उन्हें संरक्षण दिया । वह उन्हें एक पद पर <sup>द्वार</sup>द्रुम देता था । उसकी उदारता की प्रशंसा में सोमेश्वर का कथन है :

सूत्रे वृत्तिः कृता पूर्व दुर्गसिंहेन धीमता ।

विसूत्रे तु कृता तेषां वस्तुपालेन मन्त्रिणा ॥<sup>1</sup>

वस्तुपाल ज्ञान का महान संरक्षक था । उसने जनता के लिए अणहिल्लपत्तन, स्तम्भतीर्थ, और भुगुकच्छ इन तीन स्थानों पर पुस्तकभण्डार स्थापित किये । उसका अपना व्यक्तिगत पुस्तकभण्डार भी था । उसमें सभी महत्वपूर्ण शास्त्रों की एक-एक प्रति थी ।<sup>2</sup> नरेन्द्रप्रभसूरि ने वस्तुपाल की बहुयामी उपलब्धियों का सारांश एक श्लोक में स्पष्ट रूप से वर्णित किया है—

त्यागाः कुड्मलयान्ते कल्पविटपित्यागक्रियापाटवं

कामं काव्यकलापि कोमलयति द्वेपायनीयं वचः ।

बुद्धिर्धिकुरुते च यस्य धिषणां चाणक्यचिन्तामणैः

सोऽयं कस्य न वस्तुपालसचिवोत्तंसः प्रशंसास्पदम् ॥<sup>3</sup>

वस्तुपाल के कार्य ही उसे महान सिद्ध करते हैं । इसलिए कवियों, विद्वानों ने उसे अपने काव्य का विषय बनाया । जैनियों के अनुसार वस्तुपाल महापुरुष था । मुनि जिन विजय जी के अनुसार, " जैन धर्म का प्रभाव बढ़ाने के लिए जितना द्रव्य उसने व्यय किया था उतना किसी अन्य ने किया हो, ऐसा इतिहास में नहीं मिलता । मध्ययुग के इतिहास में जितने भी समर्थ जैन श्रावक हो गये हैं, वस्तुपाल उन सबमें महान् था और

<sup>1</sup> प्रबन्धकोश, १. 112 वस्तुपालचरितम् , 4. 443

<sup>2</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 38

<sup>3</sup> Ibid. P. 41

जैन धर्म का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि था । अपने धर्म में अत्यन्त चुस्त होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति ऐसी उदारता बरतने वाला और अन्य धर्मस्थानों के लिए इस ढंग से लक्ष्मी का उपयोग करने वाला उसके समान अन्य कोई पुरुष भारतवर्ष के इतिहास में मुझे तो दृष्टिगोचर नहीं होता । जैनधर्म ने गुजरात को वस्तुपाल जैसे असाधारण सर्वधर्मसमदर्शी और महादानी महामात्यका अनुपम पुरस्कार दिया है ।"<sup>1</sup>

वस्तुपाल की प्रशंसा में उसके जीवन से सम्बन्धित अनेक काव्य, नाटक, प्रशस्तियाँ और शिलालेख उसके जीवनकाल में ही प्रचुर मात्रा में लिखे गये । मृत्यूपरान्त भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई ।

#### समकालीन ग्रंथ :

#### कीर्तिकौमुदी :

यह वस्तुपाल के परम मित्र और राजा वीरधवल के राजपुरोहित सोमेश्वर द्वारा रचित एक ऐतिहासिक महाकाव्य है । इसमें 9 सर्ग हैं । प्रथम सर्ग में मंगलाचरण, कवियों की वन्दना के बाद वस्तुपाल के गुणों—महानता, अतिथिसत्कार, अच्छे व्यवहार, दयालुता, न्याय, भक्ति आदि का वर्णन है । द्वितीय सर्ग में गुजरात के राजाओं का इतिहास, बघेला वंश एवं वीरधवल का वर्णन है । तृतीय सर्ग में वस्तुपाल के वंश एवं वस्तुपाल, तेजपाल की मन्त्रीपद पर नियुक्ति का वर्णन है । चतुर्थ सर्ग में वस्तुपाल का स्तम्भतीर्थ का गवनेर बनना, वहाँ शान्ति स्थापित करना, शासन प्रबन्ध सुदृढ़ करना आदि का वर्णन है । पञ्चम सर्ग में लाट के राजा शंख को हराना, षष्ठ सर्ग में स्तम्भतीर्थ के नागरिकों को आनन्द के साथ विजयोत्सव मनाना, वस्तुपाल की कवियों के साथ बैठक का वर्णन है । वस्तुपाल ग्रीष्म ऋतु में अपना दोपहर का समय बगीचे में कवियों के साथ व्यतीत करता था और सन्ध्या को घर आता था (49-56) ।<sup>2</sup> सातवें सर्ग में महाकाव्य की परम्परानुसार चन्द्रोदय आदि का वर्णन है । आठवें सर्ग में धार्मिक विचारों की चर्चा है । धार्मिक विचारों पर गहनता से चर्चा

<sup>1</sup> प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें, पृ. 236

<sup>2</sup>

Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P.91

करते हुए अन्त में वस्तुपाल इस निष्कर्ष पर पहुँचता है :

विधौ विध्यति सक्रोधे वर्म धर्मः शरीरिणाम् ।

स एव केवलं तस्मादस्माकं जायतां गतिः ॥56॥<sup>1</sup>

नवें में वस्तुपाल की संघयात्रा का वर्णन है । अन्त में वस्तुपाल को सोमेश्वर ने कर्ष के समान दानवीर बताया है ।<sup>2</sup>

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य का प्रकाशन बम्बई में 1883 ई. में ए.वी. कथवते ने किया ।<sup>3</sup>

**धर्माभ्युदय :**

इस काव्य के रचयिता विजयसेनसूरि के शिष्य वस्तुपाल के गुरुभाई उदयप्रभसूरि हैं । इस कथा काव्य में वस्तुपाल द्वारा की गयी संघयात्रा को प्रसंग बनाकर धर्म के अभ्युदय का सूचन करने वाली अनेक धार्मिक कथाओं का संग्रह है । इसमें 15 सर्ग हैं । प्रथम सर्ग में वस्तुपाल की वंश परम्परा तथा वस्तुपाल के मंत्री बनने का निर्देश है तथा पन्द्रहवें सर्ग में वस्तुपाल की संघयात्रा का ऐतिहासिक विवरण है । इससे इस काव्य को संघपतिचरित नाम भी दिया गया है । अन्य सर्गों में (2-14) परोपकार, शीलव्रत और प्राणियों के प्रति अनुकम्पाजन्य पुण्य से सम्बन्धित अनेक धर्मकथाएँ और शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धार तथा महात्म्य सम्बन्धी अनेक कथायें हैं । प्रत्येक सर्ग के अन्त में वस्तुपालकी प्रशंसा भी की गयी है । इसमें जो प्रशस्ति-पद्य हैं, उसमें धर्माभ्युदय के रचनाकाल का उल्लेख नहीं है । लेकिन इसकी जो सर्व प्राचीन प्रति मिली है उसके अन्त में यह उल्लेख है :

'संवत् 1290 वर्षे चैत्र शुद्ध 12 रवौ स्तम्भतीर्थवेलाकूलमनुपालयता महं० श्री वस्तुपालेन

<sup>1</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 94

<sup>2</sup> Ibid., P. 92

<sup>3</sup> Ibid., P. XVI

श्रीधर्माभ्युदयमहाकाव्यपुस्तकमिदमलेखि । <sup>1</sup>

अर्थात् सं० 1290 में वस्तुपाल ने इस प्रति को लिखा । धर्माभ्युदय की रचना 1220 ई. के बाद और 1233 ई. के पूर्व कभी हुई । धर्माभ्युदय काव्य 1949 ई. में बम्बई में मुनि चतुरविजयजी और पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित सिंधी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक 4 में प्रकाशित हुआ । जिन्न रत्नकोश में पृ. 195 पर इसका वर्णन है ।<sup>2</sup>

### सुकृतसंकीर्तन :

इस काव्य के रचयिता वस्तुपाल के प्रिय कवि ठक्कुर अरिसिंह हैं । ये बघेला नरेश के राजदरबारियों में से एक थे । इस काव्य की रचना 1222 ई. और 1232 ई. के मध्य हुई है, क्योंकि इसमें वस्तुपाल द्वारा किये सभी कार्यों का वर्णन नहीं है । इसमें वस्तुपाल के जीवन और कार्यकलापों का विशेषकर धार्मिक और लोकप्रिय कार्यों का अधिक वर्णन है । इसमें 11 सर्ग हैं । प्रथम सर्ग में अणहिल्लपत्तन में राज्य करने वाले चापोत्कह राजाओं की वंशावली और उक्त नगर का वर्णन दिया है । दूसरे सर्ग में चोलुक्य वंश का वर्णन है । तीसरे में भीम द्वारा बघेला लवणप्रसाद को सर्वेश्वर पद और वीरधवल को युवराज पद पर, मंत्री पद पर वस्तुपाल-तेजपाल की नियुक्ति का वर्णन है । चौथे से ग्यारहवें तक के सर्ग में वस्तुपाल के सुकृत्यों का वर्णन है, जिनसे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक रीतिरिवाजों का दिग्दर्शन मिलता है ।

इसका प्रकाशन 1917 ई. में जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से ग्रन्थांक 51 में हुआ और इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग 31, पृ. 477 पर तथा जिनरत्नकोश पृ. 443 पर वर्णन है । इस काव्य का मूल, जर्मन अनुवाद एवं भूमिका जी. बुहलर ने जर्मन पत्रिका सित्सुंगस्वेरिख्टे ( भाग 119, सन् 1899 ) में निकाला था । जर्मन अनुवाद और भूमिका का अंग्रेजी अनुवाद ई. एच. वर्जस ने 1903 में इण्डियन एण्टीक्वेरी पत्रिका में प्रकाशित

1

Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 39 एवं;

जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 259

2 जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6 पृ. 258

किये । तत्पश्चात् अलग पुस्तिका के रूप में जर्मन और अंग्रेजी पाठ प्रकाशित हुए । सिंधी जैन ग्रंथमाला से ग्रन्थांक 32 में प्रकाशित हुआ ।<sup>1</sup>

### हम्मीरमदमर्दन :

इस नाटक की रचना जयसिंहसूरि ने वस्तुपाल के पुत्र के अनुरोध पर की । जयसिंहसूरि भड़ौच में मुनिसुव्रतनाथ चैत्य के अधिष्ठाता थे । इस नाटक की रचना 1222 ई. और 1229 के मध्य किसी समय हुई है । जैसलमेर के भण्डार में एक ताड़पत्रीय प्रति प्राप्त होती है; जिसकी लेखनतिथि 1229 ई. है ।<sup>2</sup> इस नाटक का प्रदर्शन वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह के अनुरोध पर खम्भात में भीमेश्वर के यात्रोत्सव में हुआ था ।<sup>3</sup> यह नाटक समकालिक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है । इसी विशेषता के कारण यह नाटक संस्कृत साहित्य में अपना एक स्थान रखता है । इसमें गुजरात के बघेल वंशी नरेश वीरधवल और मंत्री वस्तुपाल द्वारा मुसलमानों के आक्रमण के रोकथाम का चित्रण है । नाटक में 5 अंक हैं । नाटककार ने नाटक की एकमात्र स्त्री पात्र वीरधवल की पत्नी जयतल देवी को नायिका मानकर वीरधवल को नायक माना है, जबकि दूसरे रूप में नाटक का मुख्य पात्र वस्तुपाल प्रतीत होता है ; क्योंकि उसके महान व्यक्तित्व से सब घटनायें आच्छादित हैं । मुद्राराक्षस के चाणक्य के समान वस्तुपाल को इस नाटक में चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है ।<sup>4</sup>

इसका प्रकाशन 1920 ई. में, बड़ौदा में गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला ,संख्या 10में हुआ । जिनगत्न कोश में पृ. 459 पर इसका वर्णन है ।<sup>5</sup>

<sup>1</sup> जैन साहित्य का इतिहास, भाग 6, पृ. 403, पाद टिप्पणी 1

<sup>2</sup> वही, पृ. 592

<sup>3</sup> वही, पृ. 591, पाद टिप्पणी 1

<sup>4</sup> वही, पृ. 592

<sup>5</sup> वही, पृ. 590, पाद टिप्पणी 2

### प्रशस्तियाँ :

प्रशस्ति का अर्थ है गुणकीर्तन । संस्कृत साहित्य की यह एक अत्यन्त रोचक शैली है । प्रशस्तियों के विषय इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति होते हैं । मन्दिरों, मूर्तियों आदि स्थापत्यों के स्मृतिरूप में अनेक प्रकार की प्रशस्तियाँ लिखी जाती हैं । जैन विद्वानों ने एक विशिष्ट प्रकार की प्रशस्तियाँ लिखीं, जिन्हें ग्रन्थ प्रशस्ति अथवा पुस्तक की स्तुतिगाथा कहते हैं । ये सामान्यतः ग्रन्थों के अन्त में और कभी-कभी ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी या पुष्पिका के रूप में पाई जाती हैं । स्वतन्त्र काव्यात्मक आदर्श प्रशस्तियाँ भी जैन विद्वानों ने लिखी हैं । वस्तुपाल के सम्बन्ध में छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की प्रशस्तियाँ मिलती हैं ।

### सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी :

यह उदयप्रभसूरि द्वारा रचित 179 श्लोकों की लम्बी प्रशस्ति है जो वस्तुपाल के सुकृत्यों की परिचायक स्तुतिकथा है । इसमें अरिसिंह के काव्य सुकृतसंकीर्तन में वर्णित विषय का संक्षिप्त वर्णन है । कवि ने इस प्रशस्ति को शत्रुंजय पर्वत के ऊपर आदिनाथ के मन्दिर में किसी स्थान पर शिलापट्ट पर उत्कीर्ण कराने के लिए रचा था ।

चावडावंश, चौलुक्य राजाओं तथा वीरधवल के वर्णन के पश्चात् वस्तुपाल के वंश-वृक्ष, मंत्रित्वकाल और परिवार की प्रशंसा 98-137 पद्यों में है । पद्य 138-140 में वस्तुपाल के शौर्य और 141-149 में उसकी संघयात्राओं का वर्णन है । पद्य 150-161 में नागेन्द्रगच्छ के आचार्यों की पट्टावली तथा विजयसेनसूरि की प्रशंसा की गयी । 162-177 में वस्तुपाल द्वारा निर्मित धार्मिक तथा लौकिक भवनों को गिनाया है । यह प्रशस्ति हम्मीरमदमर्दन नामक के परिशिष्ट रूप में सन् 1920 में प्रकाशित हो चुकी है । जिनरत्नकोश में पृ 443 पर इसका वर्णन है ।

### स्तम्भतीर्थ पर उपाश्रय की प्रशस्ति :

उदयप्रभसूरि ने वस्तुपाल द्वारा स्तम्भतीर्थ में निर्मित उपाश्रय की भी एक प्रशस्ति बनायी थी जिसमें 19 पद्य

---

<sup>1</sup> जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-6 पृ 437, पादटिप्पणी 1

हैं और कुछ भाग गद्य का भी है । इसमें निर्माता और उसके गुरु के वंशवृक्ष एवं प्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।

### वस्तुपालस्तुति :

उदयप्रभसूरि की यह वस्तुपालस्तुति भिन्न-भिन्न अवसरों पर वस्तुपाल की प्रशंसा में लिखे गये पद्यों का संग्रहरूप है ।<sup>1</sup>

कवि का ही 5 पद्यों का एक प्रशस्तिलेख मिलता है जिसमें वस्तुपाल की दानशीलता एवं धार्मिकता को बतलाकर उसकी दीर्घायु की कामना की गई है । यह प्रशस्ति महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ में पृ. 303-330 में प्रकाशित मुनि पुण्यविजय जी के लेख 'पुण्यश्लोक महामात्य वस्तुपालना अप्रसिद्ध शिलालेखों तथा प्रशस्तिलेखों' में प्रशस्तिलेखांक 2 में प्रकाशित हो चुकी है ।<sup>2</sup>

### वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति :

जयसिंहसूरि कृत यह 77 पद्यों का कीर्तिकाव्य है । यह भृगुकच्छ के शकुनविहार नामक मुनिसुव्रत स्वामी के मन्दिर में छोटी देवकुलिकाओं पर तेजपाल द्वारा स्वर्ण ध्वजदण्ड चढ़ाए जाने की स्मृति में रचा गया है । चौलुक्य एवं बघेलों के वर्षनके पश्चात् दाता वस्तुपाल-तेजपाल का पद्य 39-51 में वंशवृक्ष दिया गया है और 52-62 में वस्तुपाल के सुकृत्यों की सूची दी गयी है । पद्य 63-71 में मन्दिर के मुख्य अधिष्ठाता जयसिंह के उपदेश और वस्तुपाल की आज्ञा से तेजपाल द्वारा स्वर्ण ध्वजदण्डों के निर्माण का वर्णन है । अन्त में आशीर्वचन है । यह प्रशस्ति हम्मीरमदमर्दन नाटक के परिशिष्ट रूप में प्रकाशित हो चुकी है । जिनरत्नकोश में पृ. 345 पर इसका वर्णन है ।<sup>3</sup>

<sup>1</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 131

<sup>2</sup> जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-6 , पृ. 438, पादटिप्पणी 2

<sup>3</sup> वही, पाद टिप्पणी 3

### नरचन्द्रसूरि की वस्तुपाल प्रशस्ति :

नरचन्द्रसूरि वस्तुपाल के मातृपक्ष से गुरु थे । इन्होंने वस्तुपाल को न्याय व्याकरण और साहित्य आदि ग्रन्थ पढ़ाये थे । यह प्रशस्ति 26 श्लोकों की है । पहले पद्य में मंगलाचरण, दूसरे में वस्तुपाल और तेजपाल के पूर्वजों का वर्णन है । शेष काव्य में अपने आश्रयदाता की स्तुति की है ।<sup>1</sup>

### नरेन्द्रप्रभसूरि की वस्तुपाल प्रशस्तियाँ :

नरेन्द्रप्रभसूरि ने दो वस्तुपाल प्रशस्तियाँ लिखी हैं । 104 पद्यों की एक प्रशस्ति है जो ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्व की है । चौलुक्य और बघेल वंश के वर्णन के पश्चात् पद्य 18-28 में वस्तुपाल के पूर्वजों और उसके गुणों का वर्णन किया गया है । तत्पश्चात् वस्तुपाल की तीर्थयात्राओं, जीर्णोद्धार, धर्मशाला-निर्माण आदि कार्यों का वर्णन है ।

नरेन्द्रप्रभसूरि की दूसरी वस्तुपाल प्रशस्ति 37 पद्यों की मिलती है । इसमें राजा वीरधवल और दोनों भाइयों की कीर्ति वर्णित है । इसमें किसी भी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है । ये दोनों प्रशस्तियाँ 'अलंकारमहोदधि' ग्रन्थ में परिशिष्ट रूप में प्रकाशित हो गयी हैं ।<sup>2</sup>

### यशोवीर की वस्तुपाल प्रशस्ति :

वस्तुपाल के परम मित्र यशोवीर की यह प्रशस्ति 4 पद्यों की है । इसमें वस्तुपाल के गुणों का कीर्तन मात्र है । ऐतिहासिक बात कुछ भी नहीं है । यह प्रशस्ति महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ में पृ 303

<sup>1</sup> जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 6, पृ 439,

<sup>2</sup> जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-5, पृ 110, पादटिप्पणी-3 और पृ. 109 की पादटिप्पणी 2 के अनुसार नरेन्द्रप्रभसूरि का अलंकारमहोदधि ग्रन्थ गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज में छप चुका है ।



-330 में प्रकाशित मुनि पुण्यविजय जी का लेख 'पुण्यश्लोक महामात्य वस्तुपालना अप्रसिद्ध शिलालेखो तथा प्रशस्तिलेखो' में प्रशस्तिलेखाङ्क 5 में प्रकाशित हो चुकी है।<sup>1</sup>

#### अरिसिंह की वस्तुपाल प्रशस्ति :

12 पद्यों की इस प्रशस्ति में वस्तुपाल का नाम वसन्तपाल भी दिया गया है। उदात्त काव्यात्मक शैली में वस्तुपाल की यशोगाथा वर्णित है। इसमें किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है। यह प्रशस्ति भी महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रंथ में पृ 303-330 में प्रशस्तिलेखाङ्क 6 के अन्तर्गत उद्धृत है।<sup>2</sup>

#### आबू प्रशस्ति :

सोमेश्वर द्वारा 74 पद्यों में रचित है। इसमें मन्दिर के निर्माता वस्तुपाल तेजपाल और उनके परिवार का वर्णन है। वीरधवल के वंश एवं आबू का भी वर्णन है।<sup>3</sup>

#### परवर्ती ग्रन्थ :

वस्तुपाल की मृत्यु के पश्चात् कई वर्षों तक वस्तुपाल को निमित्त बनाकर काव्य लिखे गये।

#### वसन्तविलास :

बालचन्द्रसूरि के इस काव्य में वस्तुपाल के जीवन-चरित्र का वर्णन है। बालचन्द्रसूरि वस्तुपाल के समकालीन थे। इनके आचार्य पद महोत्सव में वस्तुपाल ने इनकी कवित्वशक्ति से प्रसन्न होकर एक सहस्र द्रम्म व्यय किये थे। इस काव्य की रचना वस्तुपाल की मृत्यु के बाद, वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह के अनुरोध पर हुई थी। इसकी रचना का समय सन् 1240 से 1278 ई का मध्यवर्ती काल है। वस्तुपाल का कविमित्रों द्वारा दिया गया द्वितीय नाम वसन्तपाल था।

<sup>1</sup> जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 6, पृ 440, पादटिप्पणी 2

<sup>2</sup> वही, पृ 441, पादटिप्पणी 2

<sup>3</sup> Literary Circle of Mahamatya Vastupala, P. 128

इस ऐतिहासिक काव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने काव्य की महत्ता पर प्रकाश डालकर अपना परिचय दिया है। द्वितीय में अणहिल्लपत्तन का वर्णन, तृतीय में चौलुक्य राजा और बघेला वंश का वर्णन तथा वस्तुपाल-तेजपाल की मंत्रीपद पर नियुक्ति का वर्णन है। चौथे में वस्तुपाल के गुणों का वर्णन और उसका खम्भात का शासक नियुक्त होने का विवरण है। पाँचवें में लाट नरेश शंख को पराजित करने का वर्णन है। छठे में ऋतुवर्णन, सातवें में पुष्पावचय, दोलाक्रीड़ा एवं जलक्रीड़ा का वर्णन तथा आठवें में चन्द्रोदय का, नवे में वस्तुपाल का स्वप्न वर्णन है। दसवें सर्ग से तेरहवें सर्ग तक वस्तुपाल की तीर्थयात्राओं का विस्तृत वर्णन है। दसवें में शत्रुञ्जय यात्रा, ग्यारहवें में प्रभास तीर्थ यात्रा, बारहवें में रैवतकगिरि वर्णन और तेरहवें में रैवतकयात्रा का वर्णन है। अन्तिम सर्ग में वस्तुपाल द्वारा किये गये अनेक धर्मकार्यों का विवरण दिया गया है तथा वस्तुपाल की मृत्यु का वर्णन है।

यह काव्य 1917 में बड़ौदा में गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो चुका है। जिनरत्नकोश में पृ. 344 पर इसका विवरण है।<sup>1</sup>

#### प्रबंधावलि :

इसके रचयिता जिनभद्र है। इसमें 40 गद्य प्रबन्ध हैं जो अधिकांशतः गुजरात, राजस्थान, मालवा और वाराणसी सम्बन्धित ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं पर हैं और कुछ तो लोक-कथाओं को लेकर लिखे गये हैं। यह वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह के अनुरोध पर सन् 1233 ई. में लिखी गयी थी। परन्तु इसमें कुछ प्रबन्ध ऐसी घटनाओं पर भी हैं जो वस्तुपाल की मृत्युपरान्त घटी थीं। इसे मुनि जिनविजय जी ने अपने ग्रंथ पुरातनप्रबन्धसंग्रह के अन्तर्गत प्रकाशित किया है। इसमें वस्तुपाल के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं की ओर इशारा किया गया है, जो मुख्य कालक्रम की समस्याओं को सुलझाने में सहायक सिद्ध हुई है।<sup>2</sup>

<sup>1</sup>जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 405, पादटिप्पणी 1

<sup>2</sup>वही, भाग 4, पृ. 419

### प्रबन्धचिन्तामणि :

जैनाचार्य मेरुतुंगसूरि का यह ग्रन्थ पाँच प्रकाशों में विभक्त है । सभी प्रकाशों में कुल मिलाकर 11 प्रबन्ध हैं । ये प्रबन्ध भी सामान्यतः लघु प्रबन्धों के संग्रहरूप में हैं । इस ग्रंथ के चतुर्थ प्रकाश में दो विशाल प्रबन्ध हैं । प्रथम में कुमारपाल का वर्णन है और दूसरे प्रबन्ध वस्तुपाल-तेजपाल प्रबन्ध में दोनों भाइयों के कार्य-कलापों का वर्णन है । इसमें उन दोनों भाइयों के जन्मादिवृत्त, शत्रुञ्जयादि तीर्थयात्रा, शंख सुभट के साथ युद्ध आदि का वर्णन है । इस ग्रन्थ की रचना बढमाण (वर्धमानपुर) में 1304 ई में की गई ।

इसका प्रकाशन सिंधी जैन ग्रन्थमाला, 1 में हुआ । उसी ग्रन्थमाला से हजारी प्रसाद द्विवेदीकृत हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ । बम्बई से सन् 1888 में रामचन्द्र द्वीनानाथ शास्त्रीकृत गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुआ । कलकत्ता से 1890-91 में सी.आर. टावने कृत अंग्रेजी अनुवाद बिब्लिओथेका इण्डिका सिरीज में प्रकाशित हुआ जिनरत्नकोश में पृ. 265 पर उद्धृत है । <sup>1</sup> यह जिनविजय मुनि द्वारा सम्पादित अहमदाबाद और कलकत्ता से 1933 में प्रकाशित हुई ।<sup>2</sup>

### प्रबन्धकोश :

राजशेखरसूरि ने इस ग्रन्थ की रचना 1348 ई में दिल्ली में महणसिंह की वसति में रहकर की । यह 24 प्रबन्धों का संग्रह ग्रन्थ है । इसमें 10 जैन आचार्यों, 4 कवियों और 7 राजाओं तथा 3 राजमान्य पुरुषों के चरित हैं । राजमान्य पुरुषों में एक वस्तुपाल हैं । इसमें वस्तुपाल के जीवन की पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है । संघयात्राओं का भी वर्णन है । यह मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित अहमदाबाद और कलकत्ता से 1935 ई में प्रकाशित हुआ ।<sup>3</sup>

<sup>1</sup> जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, पृ 422, पादटिप्पणी, 1

<sup>2</sup> **Literary** Circle of Mahamatya Vastupala, P. XIV

<sup>3</sup> Ibid.

### विविधतीर्थकल्प :

कुछ ग्रन्थ लगभग 1307 ई. से 1332 ई. की समयावधि में लिखा गया । ग्रन्थकार जिनप्रभसूरि अपने समय के बहुश्रुत विद्वान एवं प्रभावशाली पुरुष थे । इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक एवं भौगोलिक सामग्री के अतिरिक्त जैन तीर्थों की उत्पत्ति इत्यादि के विषय में पर्याप्त जानकारी भी दी गई है । इसमें कई कल्प संस्कृत में हैं तो कई जैन महाराष्ट्रीय में हैं । कुछ पद्य में और कुछ गद्य में है । प्रस्तुत ग्रन्थ में 60-61 कल्प हैं । सभी कल्पों की रचना एक ही स्थान पर और एक ही समय में नहीं हुई । इसमें कुछ कल्प वस्तुपाल-तेजपाल से सम्बन्धित हैं । जैसे—

1- शत्रुञ्जयतीर्थकल्प, पृ. 1

2- श्रीउज्जयन्तस्वतः, पृ. 7

3- रैवतकगिरिकल्पः, पृ. 9

4- अर्बुदकल्पः, पृ. 15

5- वस्तुपाल-तेजःपालमन्त्रिकल्पः, पृ. 72

जिनप्रभसूरि का विविधतीर्थकल्प सिंधी जैन ग्रन्थमाला में सन् 1934 में प्रकाशित हुआ है ।

### वस्तुपालचारेतं :

इसके रचयिता जिनहर्षमणि हैं । इस ग्रन्थ की रचना वस्तुपाल की मृत्यु के 200 वर्ष बाद चित्तौड़ में सन् 1440 में हुई थी । इस ग्रन्थ में वस्तुपाल का विस्तारपूर्वक जीवन दिया गया है । यह चरित्रनायक की मृत्यु के दो सौ वर्ष बाद रचित होने पर भी इसमें उसके जीवन के कितने ही तथ्य प्राप्त होते हैं, जो किसी भी समकालीनलेखक ने नहीं दिये हैं । ग्रन्थकार ने अपने समय में उपलब्ध सभी पूर्ववर्ती ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया है, जो भी वस्तुपाल से सम्बन्धित है । मुनिजिन विजय के कथानुसार कल्हण की राजतरंगिणी का जैसा ऐतिहासिक मूल्य है उसी प्रकार इस काव्य का भी है । इस प्रकार के दूसरे ग्रन्थों में जैसी

अतिशयोक्तियों मिलती हैं उनसे अपेक्षाकृत यह मुक्त हैं ।<sup>1</sup>

मुनि कीर्तिविजय द्वारा सम्पादित वस्तुपालचरित अहमदाबाद से 1941 में प्रकाशित हुआ । इसका गुजराती अनुवाद जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर से 1917 में प्रकाशित हुआ । जिनरत्नकोश में पृ. 345 पर है ।<sup>2</sup>

<sup>1</sup> जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 416

<sup>2</sup> जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 416, पादटिप्पणी 1

# तृतीय अध्याय

जैनों के सम्प्रदाय

### तृतीय अध्याय जैनों के सम्प्रदाय

'जैन' शब्द की व्युत्पत्ति 'जि' धातु से 'नक्' तथा 'आणक' प्रत्ययों के युग्म से हुई है। 'जिन' का अभिप्राय है 'जेता' अर्थात् जीतने वाला। वह जेता का सम्बन्ध काम, क्रोध, मोह आदि नकारात्मक संवेगों से है। इन संवेगों को कषाय कहा गया है। जो इन कषायों को समाप्त कर देता है वह जिन कहलाता है। जिस धर्म में इन संवेगों पर आत्मसंयम एवं तप और त्याग के माध्यम से विजय प्राप्त करने का सांगोपांग वर्णन है वह 'जैन धर्म' कहलाता है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति के विकास में ब्राह्मण और श्रमण धर्म परम्पराओं का विशेषरूप से योगदान रहा है। जब ब्राह्मण परम्परा रुढ़िगत होने लगी तब श्रमण परम्परा का विकास प्रारम्भ हुआ। इसमें किसी भी जाति एवं वर्ण का व्यक्ति गुणों के आधार पर उच्च सामाजिक स्तर को प्राप्त कर सकता था। यही कारण था कि यह संस्कृति ब्राह्मणेतर समाज में दिन प्रतिदिन लोकप्रिय होती गयी। श्रमण धर्म की पूर्वसंध्या पर ब्राह्मण धर्म के अनुयायी जीवन का उद्देश्य भौतिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति को मानने लगे थे। वे राज्य, पुत्र, समृद्धि आदि तथा इन्द्रपद, स्वर्गीय सुख तथा अन्य कई प्रकार के पारलौकिक सुखों के लिए प्यास फलों की प्राप्ति का साधन यज्ञ था। यज्ञ में पशुओं का वध किया जाता था। इस प्रकार निरपराध पशुओं की बलि आत्मवैषम्य के दृष्टिकोण को प्रकट करती है। इसके विपरीत श्रमण धर्म में हिंसा को गृहित मानकर जीव साम्य के दृष्टिकोण को स्थान दिया गया, गद्यपि ब्राह्मण धर्म के उक्त दोषों के निवारणार्थ श्रमण धर्म के समानान्तर उपनिषदीय चिन्तन का विकास प्रारम्भ हुआ था तथा उसने सभी चिन्तनों पर वरीयता प्राप्त कर ली थी; किन्तु प्रस्तुत शोध में उक्त चिन्तन की चर्चा प्राप्ति नहीं है।

#### श्रमण धर्म के प्रवर्तक :

श्रमण धर्म के प्रारम्भ के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं है। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इसके प्रवर्तक कौन थे, परन्तु उपलब्ध साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि नाभिपुत्र ऋषभ तथा कपिल मुनि श्रमण धर्म के प्रबल समर्थक थे। पुराणों में ऋषभ व उल्लेख एक उग्र

तपस्वी के रूप में हैं <sup>1</sup> लेकिन उनकी पूरी प्रतिष्ठा जैन परम्परा में है । जैन कथा साहित्य में कपिल मुनि का केवल निर्देश प्राप्त होता है और उनकी प्रतिष्ठा सांख्य दर्शन के ग्रन्थों में है । ऋषभ और कपिल द्वारा प्रतिष्ठित साम्य भावना और अहिंसा धर्म की पोषक अनेक शाखा-प्रशाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है । जिस शाखा ने साम्यमूलक अहिंसा को सिद्ध करने के लिए अपरिग्रह पर जोर दिया है वहीं शाखा निर्ग्रन्थ (निग्नन्थ ) नाम से प्रसिद्ध हुई । जैन परम्परा के अतिरिक्त और किसी परम्परा में मुनि के लिए निर्ग्रन्थ शब्द सुप्रचलित और रूढ़ नहीं हुआ । <sup>2</sup> उनके अनुसार पूर्ण अहिंसा या पूर्ण साम्य अपरिग्रह के बिना सम्भव नहीं है । इसके प्रधान प्रवर्तक नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ थे । जैन परम्परा में 24 तीर्थकरों की मान्यता है, किन्तु केवल तेईसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ एवं चौबीसवें तीर्थकर महावीर की ऐतिहासिकता सिद्ध हो पायी है । ऐतिहासिक पुरुष पार्श्वनाथ ने महावीर से 250 वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था । <sup>3</sup> पार्श्वनाथ ने ही चार व्रत - सत्य, अहिंसा, अचौर्य एवं अपरिग्रह का उपदेश दिया था । महावीर स्वामी ने इस धर्म के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य को जोड़कर पञ्चमहाव्रतों के पालन का उपदेश दिया । <sup>4</sup>

हर्मन याकोबी ने जैन धर्म की प्राचीनता प्रतिपादित करते हुए बताया है कि इस धर्म के संस्थापक पार्श्वनाथ नहीं थे अपितु प्रथम तीर्थकर ऋषभनाथ थे । <sup>5</sup> सर्वपल्ली राधाकृष्णन का विचार है कि जैन परम्परा का प्रारम्भ ऋषभनाथ से हुआ जो प्रथम तीर्थकर थे । यजुर्वेद <sup>6</sup> में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थकरों के नामों का निर्देश है और भागवतपुराण <sup>7</sup> इस बात की पुष्टि करता है कि ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक

<sup>1</sup> जैनधर्म का प्राण, पृ. 29

<sup>2</sup> वही, पृ. 45

<sup>3</sup> हिन्दू सभ्यता, पृ. 218

<sup>4</sup> वही, पृ. 219

<sup>5</sup> इण्डियन ऐंटीक्वेरी, वाल्यूम 9, पृ. 163

<sup>6</sup> यजुर्वेद,

<sup>7</sup> भागवत पुराण,



थे ।<sup>1</sup> प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अनेक नामों का जैन परम्परा में प्राप्त होने वाले तीर्थकरों से साम्य प्राप्त होता है, <sup>2</sup> परन्तु स्पष्ट रूप से उन्हें जैन तीर्थकर नहीं कहा जा सकता, यह मात्र संयोग भी हो सकता है । इस विषय में विद्वानों में भी मतभेद रहे हैं । जैन परम्परा में तीर्थकरों के नाम तथा सामान्य चित्रण ही प्राप्त होते हैं, जो निम्न प्रकार हैं । चौबीस तीर्थकरों में से प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव ही इस पृथ्वी के प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम धर्म चक्रवर्ती आदि हुए । ऋषभदेव या आदिनाथ अपने पुत्र भरत को राज-काज सौंपकर तपस्या के लिए वन चले गये थे । पहले सवस्त्र और फिर बाद में निर्वस्त्र रहकर उन्होंने अनेक कष्टों को झेलते हुए अयोध्या के पुरिणताल नामक एक उपनगर में केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा अष्टापद पर्वत पर निर्वाण प्राप्त किया ।

जैन धर्म के अन्य चौबीस तीर्थकरों <sup>3</sup> के नाम ही जैन सूत्रों और पुराणों में मिलते हैं लेकिन उनके विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती । जैन सूत्रों के अनुसार दूसरे तीर्थकर अजितनाथ थे जो अयोध्या के राजा जितशत्रु के पुत्र थे । तीसरे तीर्थकर संभवनाथ का जन्म कौशल के श्रावस्ती नामक नगर में हुआ था । चौथे एवं पाँचवें तीर्थकर अभिनन्दन एवं सुमति का जन्मस्थान कौशल देश की विनीता नगरी थी । इन सभी तीर्थकरों को निर्वाण सम्मोद शिखर पर प्राप्त हुआ था । पद्मप्रभ छठे तीर्थकर थे, जिनका जन्म वत्स जनपद के

<sup>1</sup> जैन धर्म, पृ 365

<sup>2</sup> वही, पृ 14

<sup>3</sup> जैन भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि, पृ 108, पादटिप्पणी-3;

ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मनाथ, सुपाश्वर्चनाथ,  
चन्द्रप्रभु, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ,  
धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अर नाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ,  
नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और बर्द्धमान (महावीर) ।

प्रसिद्ध नगर कोशाम्बी में हुआ था । सातवें तीर्थंकर सुपाशर्व वाराणसी के रहने वाले थे । इन्होंने भी सम्मेद शिखर पर निर्वाण प्राप्त किया था । आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ चन्द्रपुर के निवासी थे । पुष्पदन्त अथवा सुविधि का जन्म काकन्दी नामक नगर में हुआ था जो कि बिहार में है । ये नवें तीर्थंकर हुए हैं । दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ भी बिहार के रहने वाले थे । ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांस का जन्म वाराणसी के पास स्थित सिंहपुरी में हुआ था । बारहवें तीर्थंकर बासुपूज्य का जन्म चम्पानगरी में, तेरहवें तीर्थंकर विमल का जन्म कम्पलपुर में तथा चौदहवें तीर्थंकर अनन्त का जन्म अयोध्या में हुआ था । इसमें बासुपूज्यका निर्वाण स्थल चंपापुर था ।<sup>1</sup> धमेनाथ पन्द्रहवें तीर्थंकर माने जाते हैं जो रमणपुर के रहने वाले थे । सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकर क्रमशः शांतिनाथ, कुन्थु और अरनाथ या नन्द्यावर्त हस्तिनापुर के रहने वाले थे । उन्नीसवें तीर्थंकर एक नारी थी जिनका नाम मल्लि था<sup>2</sup> और जो मिथिला की रहने वाली थी । इनकी माँ का नाम प्रभावती और पिता का नाम कुम्भ था । नायाधम्मकहा नामक जैन कथा ग्रन्थ में इनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है । मल्लिनाथ तीर्थंकर के होने पर दिगम्बर तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मध्य मतभेद है । श्वेताम्बर इन्हें स्त्री मानते हैं । लेकिन

---

<sup>1</sup> जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, पृ 126, पाटलिपुष्पी 3 :

उज्जते नेमिजिणो पावाए णिव्वुयो महावीरो  
 वीसं तु जिणवरिदा अमरा सुखंदिदा धुदाकि लेसा ।  
 सम्मेद गिरिसिहरे णिण्वाणगणणनोतेसिं  
 अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाघे ।  
 उज्जते नेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ।।  
 वीसं तु जिणवरिदा अमरासुरवंदिदा धमदाकिलेसा ।  
 सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्ववाण्णया णमो तेसिं ।।

<sup>2</sup> ए के चटर्जी, एकम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ जैनज्म, पृ 7

दिगम्बर इसका विरोध करते हैं । इन्होंने भी सम्मेद शिखर पर निर्वाण प्राप्त किया था । मुनि सुव्रत बीसवें तीर्थंकर हुए, इनका जन्म राजगृह में हुआ था । इक्कीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ मिथिला के राजा थे , जिन्हें हिन्दू पौराणिक परम्परा में राजा जनक का पूर्वज कहा गया है । जैन पुराणों <sup>1</sup> के अनुसार बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि या नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे । नेमिनाथ के पिता समुद्रविजय और श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव भाई-भाई थे । इनके पिता शौरीपुर के यादववंशी राजा अंधक वृष्णी थे । नेमिनाथ का हृदय अपने विवाह में अतिथियों के भोजन के लिए लाये गये बाँधे हुए पशुओं को देखकर करुणा से भर गया था और वे उसी समय सांसारिक जीवन त्यागकर सन्यासी होकर तप के लिए गिरिनार पर्वत पर चले गये थे । तपस्या के परिणामस्वरूप केवल ज्ञान प्राप्त होने पर वे धर्मोपदेश देने लगे । अरिष्टनेमि ने अहिंसा को धार्मिक वृत्ति का मूल मानकर उसे जीवन का सैद्धान्तिक रूप दिया । कृष्ण के समकालीन होने के कारण इन्हें महाभारत काल का माना जाता है और इनका उल्लेख महाभारत में भी मिलता है ।<sup>2</sup> इन्होंने गिरिनार पर्वत पर निर्वाण प्राप्त किया । तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे, जो ऐतिहासिक व्यक्ति हैं । भद्रबाहु कृत कल्पसूत्र-ग्रन्थ के अनुसार पार्श्वनाथ इक्ष्वाकुवंशीय काशिराज अश्वसेन और रानी वामा के पुत्र थे । इनका विवाह कान्यकुब्ज के राजा नरवर्मन की कन्या प्रभावती से हुआ था । वे 30 वर्षों तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करके काशी नगर के आश्रमपद नामक उद्यान में तीन दिन बिल्कुल निराहार रहकर भिक्षु बन गये । उनकी समाधि के बाद उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ । 83 शिष्यों के साथ पार्श्वनाथ ने सम्मेद शिखर पर निर्वाण किया जिसका नाम पार्श्वनाथ पहाड़ी प्रसिद्ध हुआ । यह घटना महावीर की मृत्यु से लगभग 250 वर्ष पूर्व हुई । पार्श्वनाथ 8वीं शती ई पू में हुए ।<sup>3</sup>

---

<sup>1</sup> हरिवंश पुराण, 34 पद्य, 151

<sup>2</sup> महाभारत 1/65

<sup>3</sup> हिन्दू सभ्यता, पृ 217, 218

वर्धमान महावीर जैन धर्म के चौबीसवें एवं अंतिम तीर्थंकर थे । यद्यपि जैनियों का सम्प्रदाय अति प्राचीन परम्परा से सम्बन्ध रखता है तथा वैदिक परम्परा के समानान्तर चला आ रहा था किन्तु इस धर्म का ऐतिहासिक रूप प्रदान करने का कार्य वर्धमान महावीर ने ही किया । वर्धमान महावीर ने 72 वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्त किया ।<sup>1</sup>

### वस्तुपालचरित में जैन तीर्थंकरों का उल्लेख :

वस्तुपालचरित में कुछ तीर्थंकरों एवं जैन आदि पुरुषों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं । जैन परम्परा के अनुसार सांसारिक पीड़ा को समाप्त करने के लिए बारह पुरुषों का अवतार हुआ था । ये अवतार कुलकर कहे गये । बारहवें कुलकर नाभि कहे गये हैं तथा प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ को नाभि का पुत्र बताया गया है । वस्तुपालचरित में भी उक्त वर्णन यथावत् प्राप्त होता है :

एतस्यामवसर्पिण्यां , प्रथमस्तीर्थनायकः ।

नाभेः कुलकरस्यासीत्सूनुर्विश्वत्रयार्चितः ॥

इक्ष्वाकूणां गुरुः स्वामी, ऋषभः परमेश्वरः ।

विनीतायां महापुर्यां, निर्मितायां सुपर्वभिः ॥<sup>2</sup>

वस्तुपाल द्वारा द्वितीय तीर्थंकर अजित स्वामी के मंदिर बनवाये जाने का उल्लेख निम्नलिखित है :

तस्मिन् प्रासादमुत्तुङ्गं , गजाश्वरचनान्दितम् ।

चतुर्विंशतितीर्थेशमन्दिरैः परितो वृतम् ॥

अजितस्वामिनः प्रौढबिम्बेन प्रकटप्रभम् ।

सोचीकरगिदरीन्द्राभं, जयस्तम्भामिवात्मनः ॥<sup>3</sup>

<sup>1</sup> ए.के. चटर्जी, ए कम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री आफ जैनिज्म, पृ. 17

<sup>2</sup> वस्तुपालचरित, 5.449.450

<sup>3</sup> वही, 3.347, 348

मन्त्री वस्तुपाल ने अष्टम तीर्थकर चन्द्रप्रभ जिन की उपासना की है । वस्तुपालचरित में उक्त प्रसंग इस प्रकार है :

देवपत्तनमासाद्य, देवानामपि दुर्लभाम् ।

स पूजां भक्तितश्चक्रे, चन्द्रप्रभाजितनेशितुः ॥<sup>1</sup>

सोलहवें तीर्थकर शान्तिनाथ की प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख है—

कर्पूरपूरगौरभश्रीशान्तिप्रतिमान्वितम् ।

सप्तमप्ततिसौवर्णकलशाढ्यमसौ तथा ॥<sup>2</sup>

उन्नीसवें तीर्थकर मल्लिनाथ के लिंग के विषय में जैनों के सम्प्रदायों में मतैक्य नहीं है । श्वेताम्बरों के अनुसार वे एक स्त्री थे जबकि दिगम्बर उनको पुरुष मानते हैं ।<sup>3</sup> वस्तुपालचरित में वर्णित मूर्तियों पर वस्त्र आदि पहनाने से ये सिद्ध होता है कि वस्तुपाल श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे । जिन हर्षगणि ने उन्नीसवें तीर्थकर के विषय में लिंग सम्बन्धी मतभेद को प्रकाशित नहीं किया है । जबकि वस्तुपाल के श्वेताम्बर होने के कारण मल्लिनाथ का स्त्रीत्व स्वाभाविक रूप से वर्णित किया जाना चाहिए था, लेकिन ग्रन्थकार ने श्लोक में मल्लिनाथ के लिए पुरुषवाची शब्द का प्रयोग कर उन्हें पुरुष रूप में प्रतिपादित किया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में सभी के सामंजस्य का प्रयास है अतः कवि ने उपर्युक्त विवादास्पद बिन्दु को स्पर्श ही नहीं किया है :

मल्लिनाथजिनाधीशवेश्मनो नव्यतां ददौ ।

सोऽतिष्ठिपद् बृहद्विम्बमूकेशवसतौ तथा ॥<sup>4</sup>

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 6 534

<sup>2</sup> वही, 7 68

<sup>3</sup> जैनधर्म, पृ. 307

<sup>4</sup> वस्तुपालचरित, 7 75

वस्तुपालचरित में बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का अनेकशः नाम आया है । कहीं उनकी मूर्ति स्थापित की गयी है कहीं उनके मन्दिर का निर्माण कराया गया है, कहीं उनके मन्दिर का जीर्णोद्धार भी कराया गया है तथा अनेक बार उनकी पूजा की गई है ।<sup>1</sup>

अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर के बिना कोई जैन रचना पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकती । वस्तुपालचरित भी इसका अपवाद नहीं है । महावीर स्वामी की पूजा एवं उनके मन्दिर निर्माण का वर्णन अनेकों बार हुआ है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि वस्तुपालचरित में जैन तीर्थंकरों का उल्लेख परम्परागत रूपसे प्राप्त होता है । प्रस्तुत ग्रन्थ ऐतिहासिक महाकाव्य है । महाकाव्य पूर्णतया ऐतिहासिक नहीं हो सकता है अतः उसमें कल्पना का मिश्रण आवश्यक होता है । यदि कल्पना नहीं होगी तो वह विशुद्ध इतिहास बन जायेगा अतः अनेक अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किये जाते हैं । ऐतिहासिक ग्रन्थों में अतिशयोक्ति की भी सीमा होती है । रचनाकार ऐतिहासिक पात्रों की मूल प्रवृत्तियों से तथा उनके नामकरण में निरंकुशता का व्यवहार नहीं कर सकता।

<sup>1</sup> ततः श्रीनेमिमभ्यर्च्य , भक्तितो भुवनेश्वरम् ।

वसुधाधिपतिर्लेभे , परमानन्दवर्णिकाम ॥

× × ×

तत्र श्रीनेमिनाथस्य , चैत्यं चञ्चद्ध्वजाञ्चितम् ।

विधाय वसुधापुर्या , भूपयामास मन्त्रिराट् ॥

× × ×

तेजपालः विनिर्मितेऽर्बुदगिरौ श्रीनेमिनो मन्दिरे ,

चञ्चत्तोरणमत्तवारणघटारतक्षोरणीकौतुकम् ।

नानामण्डपमण्डलीविरचनाश्चन्द्रांशुशुद्धाश्मनां ,

दृष्ट्वा दृष्टिफलं सदाप्यविकलं लेभे विदम्भं जनः ॥

उसको पात्रों को उसी रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है जिस रूप में वह इतिहास में वर्णित होते हैं । ऐसा हो सकता है कि ऐतिहासिक पात्रों के किसी भी कार्य के औचित्य अथवा अनौचित्य को प्रतिपादित करने के लिए कवि कुछ नवीन तथा मौलिक घटनाओं का सृजन करले परन्तु उसे ऐतिहासिकता की रक्षा करनी होती है । वस्तुपालचरित में उक्त नियम का पूर्णतः पालन हुआ है । इसमें उन्हीं तीर्थकरों का उल्लेख है, जिसका वर्णन जैन परम्पराओं में प्राप्त होता है ।

### जैन सम्प्रदाय

जैन धर्म के मुख्य रूप से दो सम्प्रदाय हैं (1) दिगम्बर, (2) श्वेताम्बर । इसके अतिरिक्त यावनीय, कूर्चक और अर्द्ध-स्फालक सम्प्रदायों के नाम विभिन्न ग्रन्थों में मिलते हैं परन्तु आज ये सम्प्रदाय प्रचार में नहीं हैं ।

### दिगम्बर सम्प्रदाय :

यह सम्प्रदाय नग्नता का पोषक है । इस सम्प्रदाय के मुनि वनों में रहते थे या शून्य गृहों में, परन्तु कालान्तर में वह नगरों में रहने लगे । दिगम्बर सम्प्रदाय का मूल संघ गण, गच्छ एवं अन्वय में विभाजित हो गया । इसके अन्तर्गत देवगण, सेनगण, देशीयगण, नन्दीगण, सूरस्थगण, काणूरगण, बलत्कारगण आदि थे ।<sup>1</sup>

### श्वेताम्बर सम्प्रदाय :

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार ज्ञान के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है निर्वस्त्र रहने से नहीं । इनके अनुसार स्त्रियाँ भी मोक्ष की अधिकारिणी हैं । ये भोजन-ग्रहण को ज्ञान में बाधक नहीं मानते । इनके अनुसार श्रमणों की कठिन तपस्या से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है अपितु लोक-नियम का पालन भी आवश्यक है । अतः इस सम्प्रदाय के आचार्यों का नग्नता के पोषक दिगम्बर आचार्यों से मतभेद होना स्वाभाविक ही था । इन आचार्यों ने धर्म को लोकप्रिय बनाने तथा कार्यसिद्धि के उद्देश्य से वस्त्र धारण करने, स्त्रियों को संघ में प्रवेश कर तपाचरण करने एवं नियमों के पालन के माध्यम से शुद्ध आचरण के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति पर बल दिया । श्वेताम्बर सम्प्रदाय की आचार्यावलि में केवली के लिए भोजन ग्रहण कर सकने की भी छूट दी गयी है, जबकि दिगम्बर

---

<sup>1</sup> जैन धर्म, पृ. 307

सम्प्रदाय स्त्रियों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति तथा जीवनमुक्त केवली द्वारा भोजन ग्रहण करने को स्वीकार नहीं करते । इस सम्प्रदाय की अन्य बातें इस प्रकार हैं— स्त्री मुक्ति, शूद्र मुक्ति, वस्त्र सहित मुक्ति, गृहस्थ वेश में मुक्ति, अलंकार वाली प्रतिमा का पूजन, मुनियों के चौदह उपकरण, तीर्थंकर मल्लिनाथ का स्त्री होना आदि ।<sup>1</sup> श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अन्दर कुछ संघ भी स्थापित किये गये जो अपने भेद-प्रभेदों के कारण पृथक्-पृथक् नामों से विख्यात हैं । इनमें चैत्यवासी श्वेताम्बर सम्प्रदाय प्रमुख है । इसके श्रमण घूम-घूम कर उपदेश देने वाली भारतीय परम्परा का त्याग करके एक निश्चित स्थान पर किसी एक चैत्य अथवा मठ या मन्दिर में स्थायित्व पाने के उद्देश्य से रहने लगे ।<sup>2</sup> ये मुनि पूजा करते हैं, आरती करते हैं, मन्दिर एवं धर्मशालाएँ बनवाते हैं । श्रावक आदि गृहस्थ को शास्त्रीय सूक्ष्म बातें बताने का विरोध करते हैं, मुहूर्त निकालते हैं, शकुन बताते हैं, सुगन्धित धूप से सुवासित रंगीन वस्त्र पहनते हैं, स्त्रियों के आगे गाना गाते हैं, साध्वियों के द्वारा लाये गये पदार्थों का उपयोग करते हैं तथा धन का सञ्चय करते हैं । श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मुनियों की शाखा जती अथवा श्री पूज्य के नाम से जानी जाती है । इसके अन्तर्गत अनेक गच्छ आते हैं । कुछ गच्छ इस प्रकार हैं— उपकेश गच्छ, खरतर गच्छ, तपा गच्छ, पाशवचन्द्र गच्छ आदि ।<sup>3</sup> प्रत्येक गच्छ के प्रवर्तक मुने हैं । इस प्रकार श्वेताम्बर दो सम्प्रदायों में बँट गया, एक सम्प्रदाय के श्रमणशील रहकर धर्मदेशना दिया करते थे तथा दूसरे सम्प्रदाय के मुनि मन्दिर अथवा चैत्यों में रहकर धार्मिक कृत्य किया करते थे ।

#### यापनीय सम्प्रदाय :

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायों के अतिरिक्त एक तीसरा सम्प्रदाय भी यापनीय एवं गोप सम्प्रदाय के नाम

<sup>1</sup> जैन धर्म, पृ. 307

<sup>2</sup> जैन धर्म, पृ. 300

<sup>3</sup> वही, पृ. 307



से प्रकाश में आया । इस सम्प्रदाय के आचार्यों को राजाओं ने अनेक वस्त्र एवं भूदान दिये । इस सम्प्रदाय के श्रमण नग्न रहते थे, ये लोग अपने हाथ पर ही भोजन ग्रहण करते थे, नग्न तीर्थंकरों की प्रतिमा की उपासना करते तथा श्रावकों को धर्मोपदेश दिया करते थे । दिगम्बर सम्प्रदाय से इसका भेद यह था कि इसकी मान्यता के अनुसार स्त्रियों को मोक्ष प्राप्त हो सकता था और केवली भोजन ग्रहण कर सकता था ।<sup>1</sup> इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त श्वेताम्बर एवं दिगम्बर के सम्मिलित सिद्धांत थे । संभवतः यह दोनों सम्प्रदायों के मध्य विषमताओं को दूर करने का प्रयास था ।

#### कूर्चक सम्प्रदाय :

पाँचवीं शताब्दी के आस-पास कर्नाटक प्रान्त में जैन-धर्म के कूर्चक सम्प्रदाय के अस्तित्व का पता चलता है । इस सम्प्रदाय के लोग दाढ़ी-मूँछों वाले होते थे अतः इन्हें कूर्चक कहा गया है ।<sup>2</sup>

#### अर्द्धस्फालक सम्प्रदाय :

कुछ दिगम्बर मुनियों ने अपनी नग्नता को छिपाने के लिए कुछ अर्द्धवस्त्र स्वीकार कर लिये थे । तभी से उनके सम्प्रदाय को अर्द्धस्फालक सम्प्रदाय कहा जाने लगा । कुछ जैन चिन्तकों के अनुसार इस सम्प्रदाय से श्वेताम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुयी ।<sup>3</sup>

#### वस्तुपालचरित में वर्णित जैन सम्प्रदाय :

वस्तुपालचरित में प्रमुख रूप से श्वेताम्बर का और प्रासङ्गिक रूप से दिगम्बर सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है । इस ग्रंथ के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि जिन हर्षगणि का वस्तुपाल श्वेताम्बर सम्प्रदाय का पोषक एवं आश्रयदाता था । इस मान्यता का आधार यह है कि प्रस्तुत ग्रंथ में अनेकशः श्वेताम्बर मान्यताओं का व्यवहार एवं

---

<sup>1</sup> जैनधर्म, पृ. 313 एवं जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 59

<sup>2</sup> जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 560

<sup>3</sup> जैनधर्म, पृ. 316

अनुपयोग दर्शाया गया है । दिगम्बर तीर्थंकरों की प्रतिमा पूजते हैं, परन्तु श्वेताम्बरों की तरह पुष्प, धूप वस्त्र और आभूषण से पूजा नहीं करते हैं । उनके अनुसार तीर्थंकर वीतरागी थे, फिर इस प्रकार रागयुक्त द्रव्यादि से सेवा कर उनको सरागी बनाना महापाप है ।<sup>1</sup> वस्तुपालचरित में अनेक बार वस्त्रों, पुष्पों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों से जिन प्रतिमा की पूजा करने का महत्व प्रतिपादित किया गया है —

वस्त्रैर्वस्त्रविभूतयः                      शुचैतरालङ्कारतोऽलङ्कृतिः,

पुष्पैः पूज्यपदं सुगन्धितनुता गन्धैर्जिने पूजिते ।

दीपैर्ज्ञानमनावृतं निरुपमा भोगदर्शित्वादिभिः ,

सन्त्येताति किमद्भुतं शिवपदप्राप्तिस्ततो देहिनाम् ।।<sup>2</sup>

वस्तुपाल ने सत्यपुर तीर्थ में महावीर स्वामी की प्रतिमा की नारियल आदि अनेक फलों और सुवासित पुष्पों के द्वारा अर्चना की । चन्दन से सुगन्धित द्रव के द्वारा मांगलिक स्नान कराकर पाँच रंग के फूलों से, कपूर, धूप, कस्तूरी, अगरबत्ती के धुएँ से पूजा की । तिलक लगाया, आरती उतारी, चन्दन लगाया और मंगलदीप जलाये ।<sup>3</sup> श्वेताम्बरों के अनुसार भरत नामक किसी चक्रवर्ती राजा को अपने भवन में ही बिना तप के केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई है, जबकि दिगम्बर इसे नहीं मानते । वस्तुपालचरित में वर्णित प्रसंग के अनुसार राजा भरत को घर पर ही केवली ज्ञान प्राप्त हुआ<sup>4</sup> अतः यह दिगम्बर परम्परा के विरुद्ध है । श्वेताम्बर परम्परा में मुहूर्त पर विचार किया जाता है तथा अनेक शकुनों और अपशकुनों का ध्यान रखा जाता है । वस्तुपालचरित में शुभ मुहूर्त के अनुसार कार्य करने के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त अनेक शकुनों की सत्यता भी स्वीकार की गई

<sup>1</sup> मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ 9

<sup>2</sup> वस्तुपालचरित, 3.78

<sup>3</sup> वही, 2 566-574

<sup>4</sup> वही, 2.21-193

है :

औदौ क्षुतं चेत् शकुनेस्ततः किं,  
पश्चात्क्षुतं चेत् शकुनेस्ततः किम् ।  
जातानजातान् शकुनान्निहन्ति,  
क्षुतं क्षणेनात्र न संशयोऽस्ति ॥<sup>1</sup>

सुन्दर श्रेष्ठि के पुत्र दुर्गत की कथा शकुनों की सत्यता को सिद्ध करती है ।<sup>2</sup> वस्तुपाल अधिकांशतः किसी कार्य को आरम्भ करते समय मुहुर्त का ध्यान रखता था । नेमिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराते समय—

कषपट्टाश्मनोऽरिष्टनेमिबिम्बं विधाय सः ।  
तच्चैत्यहेतवेऽरिष्टशतध्वंसि बृहत्तमम् ॥  
सुलग्ने च प्रतिष्ठाप्य, सोत्सवं निजसूरिभिः ।  
अनुजेन समं प्रैषीदर्बुदोर्बोधरोपरि ॥<sup>3</sup>

वस्तुपालचरितं की पुष्पिका में इसके लेखक जिन हर्ष गणि को तपागच्छ परम्परा से जोड़ा गया है । तपागच्छ श्वेताम्बरों से सम्बन्धित है । तपागच्छ का वस्तुपालचरित में भी वर्णन है—

सोत्सवं वृद्धगच्छस्य पञ्चाष्टरविसम्मिता ।  
तपागच्छ इति ख्यातं, सत्यार्थं नाम निर्ममे ॥<sup>4</sup>

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सचिव वस्तुपाल ने जैन धर्म की श्वेताम्बर परम्परा के प्रचार एवं प्रसार के लिए मुख्य रूप से प्रयास किया । अतः प्रस्तुत महाकाव्य के नायक का सम्प्रदाय श्वेताम्बर ही रहा होगा ।

अतः जैन सम्प्रदायों का उल्लेख आलोच्य ग्रंथ में नहीं मिलता ।

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 3.142

<sup>2</sup> वही, 3.80-258

<sup>3</sup> वही, 8.112, 113

<sup>4</sup> वही, 7.325

# चतुर्थ अध्याय

चतुर्विध संघ

### चतुर्विध संघ

#### सामान्य परिचय :

जैनधर्म वैदिक धर्म के समानान्तर ही पल्लवित हो रहा था अतः इसकी प्राचीनता वैदिक धर्म के समान ही सिद्ध हो चुकी है । वैदिक काल में मुनि अथवा यति धर्म के अनुयायी विद्यमान थे जो वेद में विश्वास नहीं रखते थे । इन्हीं यतियों तथा मुनियों का जैन धर्म से साम्य स्थापित किया गया है । पार्श्वनाथ ने इस धर्म को चार भागों में विभाजित किया । ये चार भाग थे—श्रमण; श्रमणी, श्रावक एवं श्राविका । ये चार भाग ही चार संघ हैं । इन चारों संघ के अलग-अलग अध्यक्ष होते थे जिन्हें गणधर कहा जाता था । जैन साधु अपने संघ या गण बनाकर किसी आचार्य के नेतृत्व में नियमों एवं व्रतों का पालन करते हुए किसी उपाश्रयमें निवास करते थे ।<sup>1</sup> प्रस्तुत अध्याय में चारों प्रकार के संघ का अलग-अलग अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है :

#### श्रावक :

जैन परम्परा में गृहस्थ को श्रावक, उपासक अथवा अणुव्रती कहा गया है । वे श्रद्धा एवं भक्ति के साथ गुरुजनों से प्रवचन का श्रवण किया करते थे । गुरुजनों के प्रति श्रद्धा के कारण उन्हें श्राद्ध एवं प्रवचन सुनने के कारण उन्हें 'श्रावक' कहा गया है । श्रावक धर्म हिन्दुओं के गृहस्थ धर्म के समान सबसे प्रमुख संघ था । श्रावकों के जीवन को नियंत्रित करने के लिए कुछ आचार एवं अनुष्ठानों का नियम बनाया गया । गृहस्थ आश्रम में रहते हुए श्रावक के लिए अणुव्रतों<sup>2</sup> के पालन का विधान था । ये अणुव्रती पाँच प्रकार के थे । यथा— स्थूल प्राणतिपातविरमण, स्थूल मृषावादविरमण, स्थूल अदत्तादानविरमण, स्वदारसंतोष तथा इच्छा परिमाणव्रत । स्थूल प्राणतिपातविरमण का अर्थ है है मन, वचन एवं काया से हिंसा करने, करवाने एवं उसका अनुमोदन करने से आंशिक रूप से मुक्त रहना । श्रावक निरपराधी प्राणियों को मन, वचन, काया से न तो मारता है और न दूसरों से मरवाता है । सावधानी पूर्वक इन व्रतों का पालन करने पर भी प्रमादवश कुछ दोष हो सकता है । अतः इस अणुव्रत से

<sup>1</sup> प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. 218

<sup>2</sup> जैन आचार, पृ. 85-104

आशिक 'अहिंसा' अपेक्षित है । स्थूल मृषावादविरमण का अभिप्राय है कि श्रावक को असत्य बोलने से बचना चाहिए । गृहस्थ आश्रम में रहते हुए पूर्ण मृषावाद का निषेध सम्भव नहीं है अतः इसके आशिक पालन की व्यवस्था की गई है । इस अपुव्रत के पाँच प्रकार बताये गए हैं— सहसा अभ्याख्यान, रहस्य अभ्याख्यान, स्वदार एवं स्पति—मंत्र भेद, मृषा उपदेश एवं कूटलेखकरण । सहसा अभ्याख्यान का अभिप्राय है कि किसी भी विषय में सहसा अपना मत प्रकट नहीं कर देना चाहिए क्योंकि विषय का सही चिन्तन किये बिना तथा तथ्यों के पर्याप्त ज्ञान के अभाव में असत्य बोलने की सम्भावना विद्यमान रहती है । अतः श्रावक को इससे बचना चाहिये । रहस्याभ्याख्यान का अभिप्राय है कि किसी की गोपनीयता का उद्घाटन नहीं करना चाहिए । स्वदार एवं सवपति—मंत्र वेद का अभिप्राय है कि पति—पत्नी के जो रहस्य होते हैं उनका उद्घाटन नहीं किया जाना चाहिए । मृषा उपदेश का अभिप्राय है कि किसी को किसी व्यक्ति से कूटनीति नहीं खेलनी चाहिए अर्थात् व्यक्ति को वह उपदेश नहीं देना चाहिए जिसका पालन वह स्वयं नहीं करता हो । प्रायः लोग अपने हित में लोगों को भ्रान्त करते हैं । जैन धर्म में इससे बचने का उपदेश दिया गया है । कूटलेखकरण का अभिप्राय है कि झूठे—लेख लिखने तथा लिखवाने नहीं चाहिये, इससे लोग दूसरों की सम्पत्ति को अधिगृहीत कर लेते हैं । स्थूल अदत्तादान विरमण का अभिप्राय है चौर्य कर्म से विरत रहना । दूसरों की सम्पत्ति को उनके अभिज्ञान में लाये बिना ले लेना चोरी कहलाता है । श्रावक से इस चौर्य कर्म से दूर रहने की अपेक्षा की जाती है । स्वदार सन्तोष का अभिप्राय है कि पति पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से यौन सम्बन्ध स्थापित न करें । श्रावक के लिए इस धर्म का पालन भी आवश्यक बताया गया है । इच्छा परिमाण का अभिप्राय है कि अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण करना तथा आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संचय नहीं करना । इन जैन श्रावकों के आचार का प्रतिपादन सूत्रकृतांग तथा उपासकदशांग आदि आगम ग्रन्थों में हुआ है ।

जैन श्रावकों के लिए बारह व्रतों के पालन की व्यवस्था है, जिनमें उपर्युक्त पाँच अपुव्रत तथा शेष सात शिक्षाव्रत हैं । इन सात शिक्षाव्रतों में तीन गुणव्रत<sup>1</sup> तथा चार शिक्षाव्रत<sup>2</sup> हैं । दिशापरिमाण, भोगोपभोगपरिमाण एवं

<sup>1</sup> जैन आचार, पृ. 104-113

<sup>2</sup> वही, पृ. 113-119

अनर्थदण्ड विरमण तीन गुणव्रत तथा सामयिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास एवं अतिथिसंविभाग नाम के चार शिक्षाव्रत हैं। दिशापरिमाण गुणव्रत का अभिप्राय है व्यवसाय आदि प्रवृत्तियों के लिये दिशाओं की मर्यादा निश्चित करना। भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत का अभिप्राय एक बार और अनेक बार प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की मर्यादा को निर्धारित करने से है। अनर्थदण्ड विरमण से अभिप्राय दैनिक जीवन में हिंसा पूर्ण व्यापार के साथ-साथ समस्त पापपूर्ण प्रवृत्तियों के त्याग से है। सामयिक शिक्षाव्रत का अर्थ है समभाव की प्राप्ति अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति श्रावक को समान भाव रखना चाहिए। देशावकाशिक का अभिप्राय है कि श्रावकों को मर्यादित क्षेत्र के बाहर न तो जाना चाहिए और न ही बाहर से किसी को बुलाना चाहिए, न किसी को बाहर से भेजना चाहिए, न बाहर से वस्तु मंगवानी चाहिए, न बाहर से किसी वस्तु का क्रय-विक्रय करना चाहिए। पौषधोपवास शिक्षाव्रत का अर्थ है कि श्रावकों को आत्मचिन्तन के लिए आहार का परित्याग कर शान्तिपूर्ण स्थान में बैठकर, श्रृंगार रहित होकर ब्रह्मचर्य एवं अहिंसा की भावना से समय व्यतीत करना चाहिए। अंतिम शिक्षाव्रत अतिथि संविभाग का अर्थ है कि श्रावक को अपने अधिकार की वस्तु का अतिथियों के लिए समुचित विभाग करना चाहिए अर्थात् निःस्वार्थ भाव से आतिथ्य सत्कार करना चाहिए।

#### श्राविका :

जैनधर्म में श्रावकों के समान श्राविकाओं के लिए कुछ आवश्यक विधान बनाये गये हैं। गृहस्थ धर्म में रहते हुए पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी जैन धर्म के उन आचरणों का पालन करती थीं जो श्रावक करते थे।<sup>1</sup>

#### श्रमण :

श्रावकों द्वारा आचरित अणुव्रतादि के पालन के पश्चात् श्रमण एवं उनके आचार का विवरण हमें विभिन्न जैन ग्रंथों में प्राप्त होता है। श्रावकों द्वारा आचरित व्रत अणुव्रत कहे जाते हैं, जबकि श्रमणों द्वारा आचरित व्रतों को महाव्रत कहते हैं। श्रावकों से हिंसादि व्रतों के आंशिक पालन की अपेक्षा की जाती है, परन्तु श्रमणों द्वारा इनके पूर्ण पालन की। श्रमण मुनियों के लिए सर्वप्रथम पाँच महाव्रतों के पालन की आवश्यकता होती है ये पाँच महाव्रत हैं—सर्वप्राणातिपात विरमण, सर्वमृषावाद विरमण, सर्व अदत्तादान विरमण, सर्वमैथुन विरमण और सर्वपरिग्रह विरमण।

---

<sup>1</sup> जैन आचार में श्राविका

**सर्वप्राणातिपात विरमण** का अर्थ है सभी प्राणियों की अहिंसा का पूर्ण परित्याग । असत्य से पूर्णतया दूर रहने को **सर्वमृषावाद विरमण** कहा जाता है । बिना दी हुयी वस्तु को ग्रहण करना **सर्व अदत्तादात विमरण** है । इस महाव्रत के पालन में बिना दी हुई वस्तु अथवा बिना अनुमति के एक तिनका उठाना भी चोरी है । इस महाव्रत के अनुसार किसी व्यक्ति की गिरी हुई, भूली हुई अथवा रखी हुई वस्तु को छूना भी निषिद्ध है । सर्वमैथुन विरमण के अन्तर्गत श्रमणों के लिए स्त्री संसर्ग का पूर्णतया निषेध किया गया है । इस महाव्रत के अनुसार मुनियों को मन, वचन एवं शरीर से स्त्री संसर्ग करना करवाना तथा इसका अनुमोदन करना निषिद्ध बताया गया है । श्रमण एवं श्रमणी के लिए किसी स्त्री पुरुष के रूप, रंग, चित्र आदि को देखना तथा गीत आदि को सुनना भी पाप समझा जाता है । सर्वपरिग्रह का अभिप्राय है सभी वस्तुओं के संग्रह से विरत रहना ।

जैन श्रमणों के लिए रात्रि के समय भोजन वर्जित बताया है ।<sup>1</sup> ऐसा इसलिए कहा गया है कि रात्रि के भोजन में हिंसा होने की संभावना रहती है । उत्तराध्ययन सूत्रसेपता चलता है कि जैन मुनियों के लिए पाँच महाव्रतों के साथ-साथ पंच समीतियों की भी आवश्यकता थी । ये हैं— ईर्या (संयम से चलना), भाषा (संयम से बोलना), ऐषणा {विधि पूर्वक भिक्षा मांगना}, आदान निषेध { वस्तु को लेना और उसे ढंग से रखना}; और प्रतिष्ठापना { मल-मूत्र का उचित प्रकार से विसर्जन करना }

त्रिगुप्तता का पालन भी श्रमणों के लिए अनिवार्य माना गया है । इसके अन्तर्गत मनोगुप्ति, वचोगुप्ति तथा कायगुप्ति नामक त्रिगुप्तियाँ आती हैं अर्थात् मन, वचन, काया से शुद्ध भाव रखना अनिवार्य बताया गया है । श्रमणों की अनिवार्य आचारावलि के अन्तर्गत तप को आवश्यक माना गया है । हृदयगत भावनाओं की शुद्ध के लिए छः आन्तरिक एवं छः बाह्य तपों का विधान किया गया है । बाह्य तप के अन्तर्गत अनशन {उपवास}, अवमोदरिका {भोजन से क्रमशः निवृत्ति}, भिक्षुचर्या { एक ही घर से भिक्षा लेना}, रस परित्याग {घी, दूध, दही, आदि का परित्याग}, कायक्लेश {धूप, शीत, वर्षा आदि को सहन करने का अभ्यास तथा वीरासन आदि द्वारा शरीर को कष्ट पहुँचाना} तथा सन्तीनता अर्थात् इन्द्रियों को वश में करना । आभ्यन्तर तप है प्रायश्चित्त, विनय, वयावृत्ति {मुनियों की

<sup>1</sup> जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ 392



बाधाओं के निवारणार्थ सेवाभाव से कार्य करना, स्वाध्याय, ध्यान चित्त वृत्तियों का निरोध और व्युत्सर्ग शरीर का मोह छोड़कर उसका त्याग करना ।

जैन मुनियों के लिए छः आवश्यक क्रियाओं का विधान है । ये हैं—सामयिक सभी जन्तुओं के प्रति समभाव रखना, चतविंशतिस्तम्भ चौबीस तीर्थकरों की स्तुति करना, वन्दना गुरु की वन्दना, प्रतिक्रमण प्रमाद वश अशुभ की ओर प्रवृत्त हो जाने पर पुनः शुभ की ओर प्रवृत्त होना, प्रत्याख्यान अहिंसा, असत्य, चौर्य, मेषुन, परिग्रह जैसे निषिद्ध कर्मों को प्रमादवश कर लेने पर उसका पुनः निषेध करना और कायोत्सर्ग शारीरिक ममत्व का त्याग । ये सभी आचरण सम्बन्धी नियम शुद्धज्ञान तथा मोक्ष प्राप्ति में सहायक माने गये हैं । कर्मों का विनाश करने को निर्जरा कहा जाता है तथा निर्जरा हो जाने पर ही केवल की प्राप्ति होती है । उपर्युक्त आचरण निर्जरा की प्राप्ति में सहायक होते हैं । इस निर्जरा के लिए सबसे उपयोगी साधन वाह्य तथा आभ्यन्तर तप हैं । यह तप आत्मा को स्वच्छ करके केवल ज्ञान की ओर अग्रसर करता है । पूर्ण ज्ञान हो जाने पर केवल ज्ञान होता है जो आवागमन के चक्र से मुक्ति दिलाता है ।

अत्यधिक आवश्यकता होने पर करणीय कृत्य अवश्य किया जाना चाहिए । इसका अभिप्राय यह है कि अहिंसा से कोई विशेष क्षति हो रही हो तो इसका त्याग किया जा सकता है । जैन श्रमण चर्या के अन्तर्गत गमनागमन विहार<sup>1</sup> का अत्यधिक महत्व था । विहार के माध्यम से ही जैन श्रमण समुदाय तीर्थकर पार्श्वनाथ, महावीरके शिक्षाओं का प्रचार एवं प्रसार जनसमुदाय में कर सकते थे । इसके अतिरिक्त जीविका के लिए भिक्षा भी आवश्यक थी । श्रमण धर्म के अन्तर्गत श्रमणों एवं संघ के आचार्यों को धर्म प्रचार कर लोगों के दुःख को दूर करने तथा जैनाचार से अवगत कराने का विधान था । जिन श्रमण शिक्षा देते हुए विहार करते थे। क्योंकि वर्षा ऋतु में अनेक जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति होती है अतः इस समय हिंसा होने की अधिक परिस्थितियाँ विद्यमान होती हैं, इस हिंसा से बचने के लिए वर्षा के समय एक स्थान पर निवास किया जाता था ।

<sup>1</sup> जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 394

श्रमणों को भिक्षावृत्ति के माध्यम से प्राप्त किये हुये भोजन को दिन में एक बार ग्रहण करने का विधान है । भिक्षा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व संघ के आचार्य की अनुमति लेनी आवश्यक थी । कभी-कभी उन्हें बिना भिक्षा लिए ही वापिस लौटना पड़ता था लेकिन ऐसा अपवाद स्वरूप ही होता था क्योंकि श्रमणों के शुद्धाचरण के कारण अधिक से अधिक लोग उनके प्रतिश्रद्धा की भावना रखते थे । श्रमणों के लिए बारह प्रकार के उपकरणों का विधान था यथा पात्र, पात्रवन्ध, पात्रस्थापना, पात्रकेसरिया, पटल, रजस्त्राण, गोच्छक, तीन प्रच्छादक, रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका आदि ।<sup>1</sup>

#### श्रमणी :

जैन श्रमण संघ में श्रावक एवं श्राविका की भाँति श्रमण एवं श्रमणियों का भी भेद किया गया है । जिस प्रकार श्राविकायें श्रावकों का अनुसरण करती थीं, उसी प्रकार श्रमणियों द्वारा श्रमणों के आचरण के पालन किये जाने का विधान है । स्त्रियाँ भी माता-पिता तथा पति की आज्ञा लेकर केवल सुख [मोक्ष] की प्राप्ति के निमित्त अनागार धर्म का आचरण करती थीं । जैन श्रमणियों का पृथक् संघ होता था जिसकी अधिष्ठात्री गणिनी कहलाती थीं, उन्हीं के निर्देशन में अन्य श्रमणियाँ नियमों का पालन करती थीं । श्रमणों एवं श्रमणियों का रहना आदि सभी अलग-अलग होता था । किसी साधु को आर्यिका से या आर्यिका को साधु से एकान्त में बातचीत करने की सख्त मनायी थी और निश्चित दूरी पर बैठने का आदेश था ।<sup>2</sup> ये श्रमणियाँ भी गोचरी कहलाती थीं अर्थात् तप एवं संयम का पालन करते हुए भिक्षा माँगती थीं । यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदाय में स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी जाती थी परन्तु श्वेताम्बर समप्रदाय में उनको श्रमणी या आर्यिका बनाया जाता था और वह मोक्ष की अधिकारिणी मानी जाती थीं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन समाज का चतुर्विध विभाजन अत्यन्त औचित्यपूर्ण था, इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के तप एवं त्याग के सामर्थ्य के अनुसार विभाजन किया गया था । जो लोग सर्वस्व त्याग करके कठोरतम मार्ग का पालन करते हुए केवल्य प्राप्त करना चाहते थे उनके लिये श्रमण या श्रमणी बनने का मार्ग खुला हुआ था । जो लोग जैन धर्म में आस्था तो रखते थे परन्तु भौतिक-पदार्थों का पूर्ण रूप से त्यागना जिनके लिए सम्भव नहीं था, वे श्रावक अथवा श्राविका बन सकते थे । इस प्रकार जैन धर्म को अव्यवहारिक नहीं कहा जा सकता । जो लोग कठिन तप, व्रतों का पालन करते थे वे स्वेच्छा से ही ऐसा करते थे तथा स्वयं में शक्तियों का विकास भी करते

<sup>1</sup> जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 391

<sup>2</sup> जैन धर्म, 286

थे । इस प्रकार जैन धर्म में न तो लौकिक पक्ष की उपेक्षा की गयी है और न ही आध्यात्मिक पक्ष की ।

### वस्तुपालचरित में चतुर्विध संघ का उल्लेख :

वस्तुपालचरित में भी जैन धर्म की लगभग सभी मान्यताओं का अनुप्रयोग देखा जा सकता है । जैन समाज की संरचना वैदिक समाज की अपेक्षा अत्यधिक सरल थी । मूलरूप से जैन समाज के दो ही विभाजन थे— श्रावक तथा श्रमण ।<sup>1</sup> यदि इनका स्त्री-पुरुष के आधार पर पुनः विभाजन किया जाये तो प्रत्येक के पुनः दो दो भाग हो जाते हैं । श्रावक तथा श्राविका एवं श्रमण तथा श्रमणी । जैने मान्यताओं के अनुसार इन सभी के लिए उपयुक्त विशिष्ट आचारों का विधान किया गया है । वस्तुपालचरित में इन सभी के लिए अपेक्षित आचरण का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है ।

जैन धर्मानुसार व्यक्ति कर्मफल से अनासक्त होकर पाप से मुक्त नहीं हो सकता अपितु उसको प्रायश्चित्त करना पड़ता है; अन्यथा वह अपने दुष्कर्मों के लिए स्वयं ही उत्तरदायी होगा । प्रायश्चित्त के विषय में वस्तुपाल चरित में कहा गया है—

कुर्मयोगेन विधाय पापं निवर्तते योऽनुशयी त्रिधापि ।

सदहकृत्यानि करोति सम्यक् तत्पापशुद्धिं लभते विवेकी ॥<sup>2</sup>

वस्तुपाल चरित में संघों के महत्व को प्रतिपादित करनेवाला अधोलिखित अंश महत्वपूर्ण है— "चारों संघों का पूजन लोकोत्तर सुख देने वाला कहा गया है । जो संघ को जाता है उसके हाथ में चिन्तामणि, आँगन में कल्पवृक्ष और सामने कामधेनु है । जो श्रीसंघ की पूजा पुष्प वस्त्र आदि से करता है उसे अक्षय फल प्राप्त होता है ।"<sup>3</sup>

<sup>1</sup> सः साधुगृहिभेदाभ्यां द्विविधो जगदे जिनेः ।

प्राणिनमिह सर्वेषामाधारो भववारिधौ ॥ वस्तुपालचरित, 5-19

<sup>2</sup> वही, 4-259

<sup>3</sup> चतुर्विधस्य संघस्य, पूजनं पर्युपासनम् ।

चतुः क्षेत्रमिदं प्राहुर्लोकोत्तर सुखप्रदम् ॥

चिन्तामणिः करे तस्य, कल्पवृक्षस्तदङ्गः ।

कामधेनुः पुरस्तस्य, सङ्घोऽभ्येति यदालयम् ॥

फलताम्बूलवासोभिर्भोजनैश्चन्दनैः सुमेः ।

श्री संघः पूजितो येन तेन प्राप्तं जनुः कलम् ॥ वस्तुपालचरित 4-368 से 370

हिन्दू समाज के गृहस्थ के समान जैन समाज के श्रावक को चित्रित किया गया है । श्रावक से सद्कर्मों में धन के निवेश की अपेक्षा वस्तुपालचरित में निम्न प्रकार से व्यक्त हुयी है । "संघ के सभी क्षेत्रों में अपने शरीर को लगाता हुआ और अपने धन को व्यय करता हुआ श्रावक अच्छा श्रावक कहलाता है । व्रत में स्थित या भक्ति से सातों क्षेत्र में धन का व्यय करता हुआ तथा दीनों पर दया करने वाला महाश्रावक कहलाता है ।<sup>1</sup> श्रावकों के ऊपर श्रमणों की भरण-पोषण की व्यवस्था को जैन धर्म में प्रतिपादित किया गया है । वस्तुपालचरित में भी साधुओं के योगक्षेम का भार सभी समर्थ लोगों पर डालेजाने का उल्लेख मिलता है । कहा गया है, "यदि कोई निर्ग्रन्थ साधु खान-पान के अभाव से दुःखी होता है तो किसी भी समर्थ व्यक्ति का योगक्षेम नहीं है ।"<sup>2</sup>

<sup>1</sup> जिनभवने जिनबिम्बे, जिनागमे जिनवरस्य वरसंधे ।

यो व्यपति निजं वित्तं, स एव पुरुषोत्तमो लोके ।।

क्षेत्रेष्वमीषु सर्वेषु, यथायोगं निजाः श्रियः ।

सद्दृष्टिर्व्रतपूतात्मा, व्ययन् सुश्रावकः स्मृतः ।।

यतः - एवं व्रतस्थितो भक्त्या, सप्तक्षेत्र्यां धनं वपन् ।

दयया चातिदीनेषु, महाश्रावक उच्यते ।। वस्तुपालचरित, 4 372-374

<sup>2</sup> अरे दुष्ट दुराचार, पण्डितमन्य दुर्मते ।

आर्हताग्रेसरो भूत्वा, प्राज्यसाम्राज्यवानपि ।।

गुणवत्सु गरिष्ठेषु, दशघाघर्मधारिषु ।

निर्गन्थेषु निरीहेषु, सर्वमात्रामीषु साधुषु ।

भक्तपानाद्यभावेन, भृशं सीदत्सु सम्प्रति ।

न विधत्से समथऽपि, योगक्षेमो मनागपि ।।

वस्तुपालचरित का नायक भी एक श्रावक है । जिनहर्ष गणि ने अपने महाकाव्य में वस्तुपाल के चरित चित्रण के द्वारा उसे अपने समय का सबसे श्रेष्ठ श्रावक प्रतिष्ठित किया है—

सम्प्रतिप्रतिमाः ख्याताः, प्रभावकतया क्षितौ ।

भूयांसः श्रावका आसन्, श्रीवीरजिनशासने ॥

लक्ष्मीसरस्वतीलीलानानासत्पुण्यकर्मभिः ।

कोऽपि श्रीवस्तुपालस्य, न परं सदृशोऽभवत् ॥

यतः – अन्वयेन विनयेन विद्यया, विक्रमेण सुकृतक्रमेण च ।

क्वापि कोऽपि न पुमानुपैति मे, वस्तुपालसदृशो दृशोऽपि ॥<sup>1</sup>

जैनधर्म में श्रमणों एवं श्रावकों से अपेक्षित आचारों का वर्णन वस्तुपालचरित के पञ्चम प्रस्ताव में राजा नरवर्मन की कथा के माध्यम से विस्तारपूर्वक किया गया है । कुछ पद्यांश दृष्टव्य हैं—

तन्मूलो यतीनां धर्मो, दशधा श्रीजिनोदितः ।

तत्र क्षमा क्रोधमुक्तिर्मार्दवं मानमर्दनम् ॥

आर्जवं कैतवत्यागो, मुक्तिर्निर्लोभता मता ।

तपो द्वादशधा सप्तदशधा संयमः स्मृतः ॥

हितं प्रियवचः सत्यं, शौचं पर वतोज्झनम् ।

स्त्रीसंगवर्जनं ब्रह्माकिञ्चन्यं न परिग्रहः ॥

धर्मो द्वादशधाख्यातो, द्वितीयो गृहमेधिनाम् ।

अपुत्रतानि पञ्च स्युः, सप्त शिक्षाव्रतानि च ॥

देशतो विरतिः प्राणातिपातासत्यभाषणे ।

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 1.5-7

अदत्तस्वाव्रस्मपरिग्रहेऽणूपञ्चकम् ।।

दिग्भोगानर्थदण्डाख्याः, साम्यं देशावकाशिकम् ।

पौषधोऽतिथिदानं च, सप्त शिक्षाव्रती मता ।।

साधुधर्ममथ श्रद्धधर्म यो भजते सुधीः ।

नासौ पतति नानार्तिविकटेऽत्र भवावटे ।।<sup>1</sup>

इस प्रकार वस्तुपालचरित में जैन समाज के चतुर्विध संघ की रीतियों एवं परम्पराओं का व्यापक व्यवहार किया गया है । इस विभिन्न जैन परम्पराओं के सूत्र यत्र-तत्र विकीर्ण परम्परा के रूप में प्राप्त होते हैं । प्रस्तुत अध्याय में उक्त प्रकीर्ण सूत्रों को संकलित करके क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने तथा जैन आगमों में वर्णित सिद्धान्तों से पुष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

---

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 5.259-265

# પંચમ અધ્યાય

સમાજ ચિત્રણ

### समाज-चित्रण

साहित्य समाज का दर्पण होता है। किसी कालांश के साहित्य का अनुशीलन करके तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों परम्पराओं एवं रहन-सहन आदि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। समाज में अनेक इकाईयाँ विद्यमान होती हैं तथा विभिन्न मतों के अनुयायी एवं विचारधाराओं में विश्वास करने वाले लोग रहते हैं अतः समाज में वैविध्य होना स्वाभाविक है परन्तु बहुसंख्या के आधार पर सामाजिक रुझान की प्रवृत्ति का सामान्यीकरण करते हुए तत्कालीन सामाजिक परिवेश के विषय में अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी आधार पर वस्तुपालचरितं में चित्रित समाज की प्रमुख विशेषतायें वर्णित की जा रही है।

#### वर्ण-व्यवस्था :

वस्तुपाल चरितं में वर्ण-व्यवस्था अत्यन्त कठोर रूप में नहीं प्राप्त होती। इसमें सामाजिक विभाजन का आधार वर्ण के आधार पर देखा जा सकता है। राजा धवलक हिन्दू अनुयायी हैं परन्तु जैन वर्ण व्यवस्था की चर्चा भी की गयी है। जैन वर्ण-व्यवस्था में मुख्यतया वणिक् वर्ग एवं शिल्पी वर्ग के दर्शन आलोच्य ग्रंथ में प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकारी वर्ग एवं विद्वतवर्ग के विषय में भी ज्ञापन होना है। वस्तुपालचरितं में वणिक् वर्ग के महत्व को स्वीकार करते हुए उसे राजा के जंगम और स्थावर कोशों में से जंगम कोश की संज्ञा दी गई है।<sup>1</sup> राजा वीर धवलक के पुत्र द्वारा एक वणिक् को त्रास दिये जाने पर राजा हृदय में वणिक् वर्ग के महत्व को धारण करते हुए कहता है कि मेरे रहते हुए इस वर्ग के व्यक्तियों को कौन त्रास दे सकता है। राजा विचार करता है कि अन्य कोई व्यक्ति होता तो उसका हाथ ही कटवा देता परन्तु पुत्र के विषय में क्या किया जाये? अन्ततः निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। राजा कहता है, 'न्याय और धर्म को छोड़ने वाले, श्रेष्ठ वणिक् को मारने वाले इस निष्ठुर को मैं राजधानी से निकाल देता हूँ तथा यह मेरे अन्तःपुर में नहीं दिखना चाहिए। इस प्रकार राजा अपने पुत्र वीरम को निर्वासित कर देता है।<sup>2</sup> राजा व्यवसाय पर वणिकों

---

<sup>1</sup>वस्तुपालचरित, 8.39।

<sup>2</sup>वही, 8.390 से 397



के एकाधिकार को स्वीकार करते हुए कहता है— 'वणिग्भिर्यवसायः स्यात्' । हिन्दू वर्ण-व्यवस्था के समान वणिक् के कार्य को व्यवसाय, क्षत्रिय के कार्य को संग्राम तथा शूद्रों को कर्म का निर्वाह बताया गया है :

वणिग्भिर्यवसायः स्यात्, संग्रामः क्षत्रियैस्तथा ।

कारुभिः कर्मनिर्वाहो, भक्षणं याचकैः पुनः ॥<sup>1</sup>

यहाँ ब्राह्मण वर्ग की चर्चा नहीं है तथा क्षत्रियवर्ग का द्वितीय स्थान पर उल्लेख है । वणिक् वर्ग का प्रथम स्थान पर उल्लेख होना समाज द्वारा व्यापार एवं वाणिज्य के महत्व को स्वीकार किया जाना बताता है ।

वस्तुपालचरितं में मंदिर निर्माण के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं । इस कार्य के लिए श्रमिकों की आवश्यकता होती है अतः श्रमिक वर्ग का महत्व उल्लेखनीय है । अपने समस्याओं को प्रदर्शित करने में श्रमिक वर्ग पर्याप्त रूप से मुखर चित्रित किया गया है । शोभन नामक एक शिल्पियों का नेता एक चैत्य के निर्माण में विलम्ब के कारण अत्यन्त शक्तिशाली मंत्री तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी के समक्ष दृढ़तापूर्वक रखने में तनिक भी संकोच नहीं करता है । वह बताता है कि पर्वत देवताओं के लिए भी दुरारोह है । इसके अतिरिक्त प्रातः शीत पड़ता है, मध्याह्न में श्रमिक भोजन आदि कर्म करते हैं । जब भोजनादि समाप्त होता है तो सन्ध्या हो जाती है और पुनः शीत पड़ने लगता है । श्रमिकों का भोजन भी शाक और गोरस से रहित है अतः उनके शरीर में भी पहले जैसी शक्ति नहीं है । यही कारण है कि निर्माण कार्य धीरे-धीरे हो रहा है ।<sup>2</sup>

अनुपमा देवी श्रमिकों की समस्या को न केवल धैर्य और सम्मानपूर्वक सुनती है अपितु उसका सम्मानजनक समाधान भी प्रस्तुत करती है । वह दिन तथा रात्रि के लिए अलग-अलग श्रमिकों की व्यवस्था करती हैं । साथ ही वह मजदूरों को समझाती भी है । इस प्रकार श्रमिकों में नये उत्साह का संचार हो जाता है ।<sup>3</sup> परन्तु कुछ समय पश्चात् वे फिर अकर्मण्य हो जाते हैं और अग्रिम धन (एडवांस) लेकर भी कार्य नहीं करते ।<sup>4</sup> उपर्युक्त चर्चा के आलोक में स्पष्ट है कि अपने महत्व को समझकर श्रमिक उसका दुरुपयोग

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितं, 8.393

<sup>2</sup> वही, 8.131 से 136

<sup>3</sup> वही, 8

<sup>4</sup> वही, 8

भी करता था । श्रमिकों की कुछ तो समस्याएँ थीं परन्तु कुछ को वे अतिशयोक्ति पूर्ण प्रस्तुति कर रहे थे । आधुनिक श्रमिक के समान अवसर मिलने पर वे भी शोषण करने से नहीं चूकता था ।

वस्तुपालचरित में अधिकारी वर्ग के निरंकुश एवं जन उत्पीड़क होने की आशंका व्यक्त की गयी है । नागपुर के धर्मात्मा राजा द्वारा धवलकपुर को छोड़कर तीर्थयात्रा के लिए निकलने के पीछे वस्तुपाल को आशंका है कि कहीं उसके अधिकारियों के कारण तो नागपुर के राजा ने ऐसा नहीं किया ।<sup>1</sup>

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वस्तुपाल चरित में वर्णित वर्ण व्यवस्था आर्थिक थी । महत्त्व का आधार समाज में व्यक्ति की उपयोगिता थी ।

#### पारिवारिक जीवन :

वस्तुपालचरित में सन्तान को माता-पिता के प्रति पूर्ण निष्ठावान् एवं उत्तरदायी चित्रित किया गया है । वस्तुपाल अपनी माता की पूजा करते हैं । सामान्यतया माता को पिता से अधिक महीयसी माना गया है । माता की पूजा से असीमित पुण्यराशि की प्राप्ति बतायी गयी है ।

माता-पितुरपि प्रायो गौरवेणातिरिच्यते ।

इतीव पूजयामास, वस्तुपालः स्वमातरम् ।।<sup>2</sup>

पूजिता माता एवं पूजा करने वाले पुत्र दोनों ही प्रशंसनीय हैं ।<sup>3</sup>

#### स्त्रियों की स्थिति :

आलोच्य ग्रंथ में वर्णित स्त्रियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम सधवा द्वितीय विधवा । सधवा स्त्रियों को प्रायः उच्च स्थान प्राप्त था जबकि विधवाओं की स्थिति प्रायः शोचनीय थी ।

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 7.131-136

<sup>2</sup> वही, 1.87

<sup>3</sup> वही, 1.88 से 91

वैधव्य की निन्दा करते हुए कहा गया है :

अग्निदाह विषावेगशस्त्रघातादि सम्भवात् ।

दुःखाद्वैधव्यवैल्कव्यं, मन्यन्ते योषितोऽधिकम् ।।<sup>1</sup>

राजा वीरधवल की पत्नी के भाई वीरधवल से युद्ध करने को तत्पर हैं तथा वीरधवल की मृत्यु हो जाने पर अपनी बहिन का दूसरा विवाह करने का आश्वासन देते हैं । इस पर रानी अपना विरोध व्यक्त करती हुई कहती है कि पति के मर जाने पर जो स्त्री दूसरा विवाह करती है वह रौरव नरक में गिरती है परन्तु स्त्री वैधव्य की रक्षा करती है तो उसी पति को प्राप्त करके स्वर्ग के सुखों को भोगती है ।<sup>2</sup> रानी के भाईयों के उक्त प्रस्ताव से स्पष्ट है कि विधवा विवाह प्रचलित थे । स्वयं वस्तुपाल की माता का विधवा विवाह हुआ था । परन्तु माता के रूप में स्त्री सदैव ही सम्मान के योग्य थी और उसका स्थान पिता से भी बढ़कर माना जाता था ।

सधवा स्त्रियों का सम्मान था ही । योद्धा अपनी प्रिया के हाथों से मोदक आदि खाना शुभ मानते थे ।<sup>3</sup> तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी अत्यन्त चतुर एवं विदुषी थी । प्रत्येक कार्य से पूर्व वस्तुपाल एवं तेजपाल उनसे विचार-विमर्श किया करते थे । श्रमिकों द्वारा मन्दिर निर्माण कार्य से विरक्ति दिखाने पर अनुपमा देवी की प्रेरणा ही उन्हें उनके कार्य की ओर उन्मुख करती है ।<sup>4</sup> इस घटना से एक बात और यह स्पष्ट होती है कि तत्कालीन उच्च वर्ग की स्त्रियाँ भी धार्मिक कार्यों के प्रति पुरुषों के समान जागरूक थीं ।

तत्कालीन समाज में गन्धर्व विवाह के प्रसंग भी देखे जा सकते हैं । मन्त्री की पुत्री द्वारा मन्दिर में

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितं, 2.268

<sup>2</sup> वस्तुपालचरितम्, 2.280-284

<sup>3</sup> वही, 2.293-294

<sup>4</sup> वही, 8.151-157

आकर सोये हुए पुरुष से विवाह किया जाना गन्धर्व विवाह का ज्वलन्त उदाहरण है ।<sup>1</sup> विक्रम राजा की पुत्री ने किसी राजकुमार से विवाह करने के लिए रात्रि में रस्सी की सीढ़ी अपने महल के झरोखे से लटका रखी थी संयोगवश राजकुमार के स्थान पर श्रेष्ठी पुत्र कौतुक वश उसका प्रयोग कर लेता है और बिना किसी विशेष जाँच के उसके साथ राजकुमारी का विवाह हो जाता है ।<sup>2</sup> विवाह हो जाने पर जमाता कैसा भी हो उसका सम्मान किया जाता था । राजा सोचता है कि अपनी पुत्री के पति को पीड़ित करना उचित नहीं है । जमाता जैसा भी हो मान्य होता है—

ततोऽस्य दुहितुः पत्युः, पीडां कर्तुं न युज्यते ।

यादृशस्तादृशो यस्माज्जामाता मान्य एव हि ।।<sup>3</sup>

लेकिन अधिक समय तक श्वसुराल में रहने पर उसका सम्मान नहीं होता था । दानदेने से दरिद्र हुआ पुण्यसागर अपनी पत्नी के कहने पर ससुर के घर पर जाता है परन्तु सम्मान न मिलने के कारण वापिस आ जाता है तथा वह अपमान को सहन नहीं कर पाता ।<sup>4</sup>

[वस्तुपालचरित में स्त्रियों के सम्मान के विषय में एक अत्यन्त रोचक वृत्तान्त आया है कि वस्तुपाल योगिनीपुरी के यवनराजा मोजदीन की विधवा मां का बहुत अधिक सम्मान करता है तथा उसे हज यात्रा को भेजने का प्रबन्ध करता है । उस वृद्धा के अपनों ने ही सब कुछ छीन लिया था उसकी करुण व्यथा को सुनकर वस्तुपाल का हृदय द्रवित हो जाता है और वह योगिनीपुरी के राजा से शत्रुता भुलाकर उक्त वृद्धा की सहायता करता है तथा हज से लौटने के बाद उसे ससम्मान योगिनीपुरी भिजवा देता है ।<sup>5</sup> उपर्युक्त

---

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितं, 3.167-175

<sup>2</sup> वही 3.194.202

<sup>3</sup> वही, 3.232

<sup>4</sup> वही, 6.434-439

<sup>5</sup> वही, 7.220-232

उदाहरण में 'नारी सम्मान' पराकाष्ठा एवं विरोधी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भावना का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है ।

#### राज्य-व्यवस्था :

वस्तुपालचरित में चित्रित समाज राजनीति के प्रति जागरूक था । 'कोउ नृप होय हमें का हानि,' की स्थिति नहीं थी क्योंकि वस्तुपाल द्वारा मोजुद्दीन को हराये जाने पर कुलस्त्रियाँ मंगल गीत गाती हैं । पूरा धवलकपुर आनन्द विभोर हो उठता है । देवों की विशेष पूजा की जाती है । राजमागों को सजाया जाता है और नगरों में विशेष प्रकार का हर्ष होता है । वधुओं ने विशेष वस्त्र धारण किया है ।<sup>1</sup>

आधुनिक समाज में जिन राष्ट्रीय चेतना का प्रसार नहीं देखा जाता है वही लगभग 700 वर्ष पूर्व के वस्तुपालचारेत में उच्च आदर्श के रूप में देखा जा सकता है । इस अवसर पर कवियों ने कानों को सुख देने वाले साहित्य की रचना की । कवियों द्वारा इस महान् विजय के पश्चात् रचनायें करना स्वाभाविक ही था क्योंकि किसी भी राष्ट्रीय उपलब्धि के बाद कवियों को तद्विषयक साहित्य निर्माण के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है ।

तत्कालीन अधिकारी वर्ग भी जनता का शोषण करता था । वस्तुपाल अपना क्षोभ व्यक्त करते हुए कहता है कि, 'अधिकार युक्त उन पुरुषों को धिक्कार है जिनसे सन्त लोग शंका करते हैं ।' वस्तुपाल अधिकारियों की दुर्गति के विषय में शास्त्रीय प्रमाण का स्मरण करते हुए कहता है कि शास्त्रों में अधिकारियों की दुर्गति कही गयी है क्योंकि यह पापी लोग पुण्यशील लोगों से द्वेष करते हैं । ये दुष्ट अधिकारी संसार में क्षुद्र कार्य करते हैं ।<sup>2</sup> एक प्रसंग आता है कि वस्तुपाल ने रिश्वतखोरों एवं चुगलखोरों को दण्ड दिया ।<sup>3</sup> इसके अतिरिक्त सैन्य समर्थन से अन्याय करने वाले मुखियाओं का धन छीन लिया ।

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 7.91 से 93

<sup>2</sup> वही, 7.134-135

<sup>3</sup> वही, 2.215-216

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन अधिकारी वर्ग भी जनता का शोषण करता था । वस्तुपाल तत्कालीन प्रशासन के दोषों से भी भली-भाँति परिचित था । अधिकारियों के मूल चरित्र का उसे पूर्ण ज्ञान था । वह जानता था कि राजा के धर्मशील होने पर भी अधिकारी लोग छुद्र कार्यों द्वारा समाज को उत्पीड़ित करते थे । अतः इस प्रकार के तत्त्वदर्शी व्यक्ति के द्वारा अधिकारियों के द्वारा सामाजिक शोषण एवं उत्पीड़न को रोकने की व्यापक व्यवस्था किया जाना स्वाभाविक ही है ।

तत्कालीन समाज में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति के समय में बहुत अधिक विश्वास नहीं किया जाता होगा । यही कारण रहा होगा कि वस्तुपाल मन्त्री पद के लिए की जाने वाली संधि को लिखित रूप में करने का आग्रह करते हैं और राजा भी अपने कुल गुरु सोमेश्वर की प्रतिभूति {जमानत} पर मन्त्रिपद देता है ।<sup>1</sup>

#### न्याय एवं दण्ड व्यवस्था :

वस्तुपालचरित में न्याय-व्यवस्था कठोर चित्रित की गई है । परन्तु दण्ड संहिता समान नहीं थी । इसका प्रयोग व्यक्ति के अनुसार किया जाता है । राजा धवलक अपने पुत्र वीरम को एक वणिक् कोसताने के आरोप में देश से निकाल देता है परन्तु वह स्वयं स्वीकार करता है कि अन्य कोई व्यक्ति होता तो उसका हाथ काट लिया जाता ।<sup>2</sup> इस नियम को प्रयोग राजा वीसल के मामा पर देखा जा सकता है । एक जैन मुनि को उत्पीड़न करने के अपराध में उसका हाथ काट लिया जाता है ।<sup>3</sup>

#### आर्थिक स्थिति :

धन सभी भौतिक एवं धार्मिक कार्यों के सम्पादनार्थ परम आवश्यक है । धन के अभाव में कोई भी कार्य सम्पादित नहीं किया जा सकता । वस्तुपालचरित में एक ऐसा प्रसंग आता है कि एक चैत्य का निर्माण धनाभाव के कारण अवरुद्ध हो जाता है । वस्तुपाल एवं अन्य धार्मिक व्यक्तियों के लिये चैत्य निर्माण में

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 1.259-260, 263

<sup>2</sup> वही, 8.390-397

<sup>3</sup> वही, 8.488 से 491

धार्मिक भावना प्रेरक थी परन्तु शिल्पियों एवं श्रमिकों को धार्मिक भावना से बहुत अधिक लेना देना नहीं था । वे तो धन के लिए ही कार्य करते थे । यही कारण था कि धन पर्याप्त रूप से न मिलने के कारण वे कार्य से जी चुराना आरम्भ कर देते हैं ।<sup>1</sup>

श्रमिकों की इस प्रवृत्ति का सामान्यीकरण करते हुए कहा जा सकता है कि समाज का श्रमिक आदि सामान्य वर्ग धार्मिक भावना में विशेष रूप से अनुरक्त नहीं होता था। उसके लिए आर्थिक हित सर्वोपरि होते थे। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अर्थ के समक्ष धन गौण रहा होगा । आधुनिक समय में भी देखा जा सकता है कि कुछ मुट्ठीभर लोग ही धर्म के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने को तत्पर रहते हैं । बहुसंख्या तो उन्हीं लोगों की है जो व्यक्तिगत हितों को धार्मिक हितों के ऊपर वरीयता प्रदान करते हैं ।

आलोच्य ग्रंथ में धन के महत्व के विषय में अन्यत्र कहा गया है कि दुष्टों का संहार किये बिना वह नाममात्र का राजा होता है ।<sup>2</sup> धन के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि एक सीमा तक ही दान देना चाहिए । श्रीमाली द्वारा सर्वस्वदान कर देने पर उसकी स्त्री उसे समझाती है कि धन का चतुर्थ अंश ही दान में देना चाहिए ।<sup>3</sup>

धन का महत्व होते हुए भी इतना अवश्य था कि धन के साथ धर्म भी आवश्यक था । कहा भी गया है कि लक्ष्मी का फल धर्म के स्थान पर लगाने से प्राप्त होता है ।

### लोक विश्वास

#### गुरु का महत्व :

भारतीय परम्परा के अनुसार गुरु का अत्यन्त उच्च स्थान होता है । वस्तुपाल चरित में इस पुरातन सिद्धान्त का व्यवहार देखा जा सकता है । वस्तुपाल एवं तेजपाल अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विधि के साथ यथावसर

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 8.114 से 117

<sup>2</sup> वही, 2.228

<sup>3</sup> वही 6.417

गुरु के पास जाकर उन्हें प्रणाम करते हैं<sup>1</sup>। समय – समय पर गुरु उन्हें धर्मदेशना देते थे। हरिभद्रसूरि, नरचन्द्रसूरि, विजयसेनसूरि आदि गुरुजनों ने वस्तुपाल और तेजपाल को समय – समय पर देश तथा अन्य विषय पर उचित सलाह दी। कभी-कभी किसी मानसिक त्रास के उपस्थिति होने पर गुरु अपने उपदेशरूपी अमृत के द्वारा मनोबल को टूटने से बचाया करते थे। वस्तुपाल को उसकी माँ की स्मृति होने पर गुरु उसकी विभिन्न प्रकार से देशना देते हैं। इसी प्रकार तेजपाल की उसकी पत्नी के निधन पर होने वाले अवसाद का शमन भी गुरु की देशना द्वारा सम्पन्न होता है।

गुरु का अत्यधिक सम्मान व्यक्त किया गया है। परन्तु विशेष अवसर पर गुरु भी अपने शिष्य के समीप उपस्थित हो जाते थे। एक अवसर पर राजा वीरभवल के कुलगुरु सामेश्वर आशीर्वाद देने के लिए उसके पास उपस्थित होते हैं<sup>2</sup>। गुरु को स्वर्ग और मोक्ष का प्रकाशक माना है।

भास्वता गुरुणा नानातप् स्थितिभृति तयोः।

इति प्रकाशितः सम्यग्, मार्गः स्वर्गापवर्गयोः<sup>3</sup>॥

#### अतिथि सत्कार :

वस्तुपालचरित में अतिथियों का विशेष सत्कार देखने को मिलता है। वस्तुपाल सदैव सन्तों के आगमन की इच्छा रखता था। नागपुर का धर्मात्मा राजा स्वभाव की सरलता के कारण तथा अनावश्यक औपचारिकताओं से बचने के लिए धवलक पुर को छोड़ते हुए तीर्थयात्रा के लिए निकल जाता है यह जानकर वस्तुपाल को बहुत क्षोभ होता है वह सोचता है कि यह उसके दुष्कर्मों का फल उदय हुआ है जो नागपुर का धर्मात्मा राजा देव एवं गुरुओं से सुशोभित धवलकपुर को छोड़कर चला गया है।<sup>4</sup>

1. वस्तुपालचरि, 1.94

2. वही. 1.218

3. वही, 4.308

4. वही, 7. 128-137



अतिथि का सत्कार विशेष विधि से किया जाता था । आलोच्य ग्रंथ में एक स्थल पर वस्तुपाल एवं ललिता देवी द्वारा मुक्ताफल, फल तथा खीलों आदि से घर के आँगन में संघ का स्वागत किये जाने का उल्लेख है । उनके स्वागत के लिए घर को सजाया जाता है । वे दुग्ध तथा सुगन्धित जल आदि से अतिथियों के पैरों को धोते हैं और भोजन कराते हैं । वस्तुपाल के अनुसार अतिथि का आगमन सुकृत पुण्यों का फल होता है ।<sup>1</sup>

### जीवन की मूल्यवत्ता :

वस्तुपालचरित में जीवन के अमूल्यतत्त्व के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया है । रत्न आदि की सम्पन्नता से मनुष्यत्व का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता क्योंकि करोड़ों रत्न मानव जीवन को सुखी तो बना सकते हैं परन्तु क्षणभर की आयु के भी स्थानापन्न नहीं हो सकते । जिस व्यक्ति ने दुष्प्राप्य शरीर को प्राप्त करके भी धर्म नहीं किया वह उसी प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति अनन्त प्रयासों के पश्चात् प्राप्त की हुयी चिन्तामणि को अपने ही प्रमाद के द्वारा समुद्र में गिरा देता है ।<sup>2</sup>

### सामाजिक कल्याण के लिये राज्य की प्रतिबद्धता :

आलोच्यग्रंथ में राज्य को सामाजिक कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध चित्रित किया गया है । मंत्री द्वारा अनेक सत्रालयों का निर्माण किया गया जिनमें चिकित्सा की व्यवस्था की गयी । भोजन के पश्चात् यथारुचि मिष्ठान वितरण और गन्धमाला विलेपन आदि की सुविधायें भी दी जाती थीं तथा बीमार लोगों के लिए पथ्य भी उपलब्ध कराया जाता था । अनेक प्रकार के यथायोग्य वस्त्र भी दिये जाते थे ।<sup>3</sup> वस्तुपालचरित में साधुओं के योगक्षेम का भार सभी समर्थ लोगों पर डाले जाने का उल्लेख मिलता है ।<sup>4</sup>

### शकुनों में विश्वास :

जन सामान्य में अनेक रीतियाँ, विश्वास एवं शकुन व्याप्त होते हैं । उच्च वर्ग उनकी सत्ता को

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितम्, 7.152-162

<sup>2</sup> वस्तुपालचरितं, 5.171-73

<sup>3</sup> वही, 4.322-326

<sup>4</sup> वही, 5.233-235

प्रायः स्वीकार नहीं करता । यथा वेदान्त के उच्च चिन्तन में इन विश्वासों को स्थान प्राप्त नहीं है । वहाँ प्रत्येक कार्य कर्म फल पर आश्रित है । वेदान्त का उच्च दर्शन साधारण लोगों के लिए नहीं है । इसके विपरीत जैन तथा बौद्ध धर्म प्रत्यक्ष रूप से जनता से जुड़े हुये थे । अतः वहीं जन-जन में प्रचलित शकुन आदि विश्वासों को देखा जा सकता है । आलोच्य ग्रंथ में अनेकत्र इस प्रकार के शकुनों एवं विश्वासों का चित्रण प्राप्त होता है । यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय हल और पुष्प हाथ में लिए हुए स्त्री को देखकर वस्तुपाल अच्छे शकुन की अपेक्षा करता है । गधे के स्वर को भी अच्छे शकुन के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।<sup>1</sup>

#### सन्तान : पुत्र/पुत्री :

वस्तुपाल चरित्र में सन्तान को परलोक के सुधार के लिए माना गया है ।<sup>2</sup> यह व्यवस्था हिन्दू धर्म के समान है क्योंकि श्राद्ध और परलौकिक कार्य करने के निमित्त सन्तान की कामना हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में देखी जा सकती है ।

आलोच्य ग्रंथ में मांसाहार को ग्रहित माना गया है ।<sup>3</sup>

---

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितम्, 6.125-127

<sup>2</sup> वही, 5.308

<sup>3</sup> वही, 5.379-380

# ષષ્ઠ અધ્યાય

મન્દિર પૂજા

### मंदिर पूजा

चित्र को एकाग्र करने के उद्देश्य से आलम्बन के रूप में आराध्य देव की साकार प्रतिमा के माध्यम से अपने सात्विक मानोभावों को जागृत करना पूजा कहलाता है । यही मूर्तिपूजा मंदिर निर्माण की जननी है । पूजा के माध्यम से साधक जिनके गुणों से प्रेरणा लेकर तदनु रूप बनकर मोक्ष प्राप्ति की कल्पना करता है एवं अपने गुणों से मोक्ष प्राप्ति की योग्यता अर्जित करता है । वे अपने चारित्रिक मलों का निष्कासन भक्ति के माध्यम से करता है । इसी उद्देश्य से वस्तुपालचरितं में जिन भक्ति के ऊपर देशना दी गई है । कहा गया है कि जन्मों में वह जन्म श्रेष्ठ है जिसमें जिनकी विधिपूर्वक भक्ति की जाती है । जिन भक्ति को कल्पलता के समान बताया गया है ।<sup>1</sup> यहाँ सकाम जैनभक्ति के रूप को भी देखा जा सकता है क्योंकि वह सम्पदाओं को देनेवाली कही गयी है । जैन धर्म में निष्काङ्क्ष भक्ति पर बल दिया जाता है जबकि हिन्दू भक्त याचक होता है । वस्तुपालचरित के उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि जैन धर्म हिन्दू मान्यताओं से प्रभावित होता रहा है ।

जैन पूजा में विधि पर विशेष बल दिया जाता है तथा अनेक द्रव्यों से पूजा करने का विधान है । वस्तुपालचरितं में जिनकी पाँच प्रकार की भक्ति, पुष्पों से पूजा, जिनाज्ञा पालन, उनका उत्सव एवं तीर्थयात्रा के महत्व पर बल दिया गया है । आठ प्रकार के गन्धधूप आदि द्रव्यों से जिन पूजा करने की देशना दी गई है । शत्रुंजय इत्यादि तीर्थों पर मंदिर बनवाना शुभ बताया गया है ।<sup>2</sup> वस्तुपाल एवं तेजपाल अपने परिवार के साथ शत्रुंजय एवं रेवतक पर्वत की यात्रा करते हैं ।<sup>3</sup> वस्तुपालचरितं में तीर्थयात्रा पर व्यय की गई लक्ष्मी

<sup>1</sup> भवेषु स भवः श्लाघ्यश्चिन्तामणिरिवाश्मसु ।

भक्तिर्यत्र जिनेन्द्रस्य विधिपूर्व विधीयते ।।

दत्ते चित्तेप्सिता भक्तिः, सम्पदः श्रीमदर्हतां ।

दौर्गत्यं द्राग् तिरस्कृत्य, कल्पवल्लीव देहिनः ।। (वस्तुपालचरितं : 1. 98,99)

<sup>2</sup> वही, 1. 100 से 118

<sup>3</sup> वही, 1. 145

के महत्व को प्रतिपादित किया गया है ।<sup>1</sup>

वस्तुपाल ने अनेक जिनालयों का निर्माण कराकर सच्चे श्रावक का परिचय दिया है । वस्तुपालचरितं में प्रतिमा एवं मन्दिरों के निर्माण को अनेकत्र स्वीकार किया गया है । वस्तुपाल मन्दिरों का निर्माण भी कराते हैं एवं उनका जीर्णोद्धार भी कराते हैं । उन्होंने भीमपल्ली में सुवर्ण कलश से युक्त पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया ।<sup>2</sup> आदित्यपाटन, ऋरेण्डक पुर में शुद्ध धातु की प्रतिमायुक्त चैत्य बनवाये ।<sup>3</sup> श्री रायदग्राम में सप्त लाख धन के व्यय से महावीर के चैत्य का जीर्णोद्धार करवाया ।<sup>4</sup> थारापद्रपुर में पहुँचकर मंत्री ने कुमारपाल द्वारा निर्मित मंदिर के समान नवीन जैन मंदिर बनवाया ।<sup>5</sup> तेजपाल ने अर्बुद पर्वत पर नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया । वीरपालदेव के पुराने मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया गया । इतना ही नहीं भोजन सामग्री के लिये सत्रागारों तथा चैत्यों में स्नान की भी व्यवस्था की गई । यात्रियों के लिए छाया की व्यवस्था का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।<sup>6</sup>

वस्तुपालचरित में उल्लिखित मंदिरों के निर्माण एवं जीर्णोद्धार से तत्कालीन जिन पूजा के महत्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । कल्याण मंदिर स्तोत्र में कहा गया है कि हे जिनेन्द्र ! जिस प्रकार से अशुद्ध स्वर्ण अग्नि की तेज आँच से अपनी अशुद्धता को त्यागकर शीघ्र ही परिशुद्ध हो जाता है उसी प्रकार

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित 1. .37 से 41

<sup>2</sup> वही, 2. , 301

<sup>3</sup> वही, 2.25 (ए) 321

<sup>4</sup> वही, 2.25 (ए) 331

<sup>5</sup> वही, 2.26 (ए), 601

<sup>6</sup> वही, 6.240-243

आपके ध्यान से संसारी जीव भी शरीर को त्यागकर शीघ्र ही परमात्म दशा को प्राप्त हो जाते हैं । आचार्य वसुनन्दी कहते हैं कि अधिक क्या कहें तीनों लोकों में जो भी सुख है वे सब जिनेन्द्र पूजन के फल से प्राप्त हो जाते हैं । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इस प्रकार वस्तुपालचरित में जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित पूजा के महत्व का सम्यक् परिपाक देखा जा सकता है ।

उपर्युक्त कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि जिनेन्द्र प्रतिमा के पूजन से वैभव प्राप्त होता है । जिनेन्द्र तो वीतरागी हो चुके हैं । वे किसी को दण्ड अथवा पुरस्कार नहीं देते हैं । जिन प्रतिमा के दर्शन एवं पूजन का लक्ष्य उनके सम्मान बनने की प्रेरणा प्राप्त करना है । वीतराग भगवान से भौतिक सुखों की याचना करना अज्ञान की पराकाष्ठा है । वस्तुपालचरित में पूजन करते समय किसी यान्त्रिकता का प्रसंग प्राप्त नहीं होता है । इसमें परिग्रह छोड़ने के लिए पूजन किया गया है न कि परिग्रह जोड़ने के लिए ।

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व आचार्य कुन्दकुन्द ने वाह्य स्वरूप की पूजा को मिथ्या प्रतिपादित किया है । गुणेष्वनुरागः भक्ति कहा जाता है । परन्तु वस्तुपालचरित में प्रतिमा के वाह्य स्वरूप को अलंकृत करने के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं । अतः प्रश्न हो सकता है कि यदि जैन दर्शन में केवल गुणों की पूजा का महत्व है तो शारीरिक अलंकरण का क्या उद्देश्य है ? वस्तुतः यह प्रतिमा को अधिकाधिक सजीवता प्रदान करने के लिए किया जाता है । यदि भक्ति के लिये आलंबन की आवश्यकता है तो आलम्बन के नयनाभिराम होने से उसकी उपादेयता में वृद्धि ही होती है । इसका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि जैन पूजन केवल वाह्य स्वरूप में ही उलझकर रह गया है ।

जैन पूजा मंदिरों में ही की जानी चाहिए । क्योंकि घर ममता का प्रतीक है और मंदिर समता के स्थान हैं । घर में विभिन्न भौतिक पदार्थों एवं कार्यों के प्रति आसक्ति हो सकती है । वहाँ का वातावरण भी रागमय होता है। मंदिर का वातावरण आध्यात्मिक एवं त्यागमय होता है अतः आराधना के लिए मंदिरों की आवश्यकता पड़ती है । वस्तुपालचरित में मंदिरों के साथ-साथ घर में ही बनाये गये मंदिरों में भी पूजा किये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं । इन्हें वेश्म देवालय कहा गया है ।

इत्यालोच्य शुचि स्वान्तः, सानुजः सचिवेश्वरः ।

विधायाष्ट विधां पूजां वेश्म देवालये अनघाम् ॥<sup>1</sup>

<sup>1</sup>वस्तुपालचरित 2.352

वस्तुतः मंत्री के लिये व्यस्तता के कारण दैनिक मंदिर दर्शन करना व्यावहारिक नहीं हो सकता । अतः घर में ही मंदिर की व्यवस्था थी । घर में मंदिर का होना यह भी संकेत देता है कि यदि परिग्रह एवं राग को छोड़ा जा सके तो कहीं भी पूजा की जा सकती है परन्तु रागमय जीवन होने पर किसी भी तीर्थ में की गई पूजा व्यर्थ है । जहाँ तक वातावरण का प्रश्न है तो सचिव के लिए यह सम्भव है ही कि वह अनुकूलवातावरण वाले मंदिर का निर्माण करा सके ।

वस्तुपालचरितं में धार्मिक सहिष्णुता मंदिरों की पूजा के प्रसंग में भी देखी जा सकती है । हिन्दू देवताओं के पूजन एवं मंदिरों के निर्माण एवं जीर्णोद्धार के प्रसंग प्राप्त होते हैं । सूर्यपुर में सूर्यमंदिर का जीर्णोद्धार कराया गया है तथा वेद पाठ के लिये ब्रह्मशाला का निर्माण कराया गया है तथा वहीं दो सभागार भी बनवाये गये हैं ।<sup>1</sup> वस्तुपाल ने शत्रुञ्जय पर्वत पर पहुँचकर अपने हिन्दू राजा वीरधवलक की ओर से शिव की पूजा की थी । यह धार्मिक सहिष्णुता एवं सम्मान का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । वस्तुपाल ने योगिनीपुर के यवन बादशाह मौजुद्दीन की माँ के लिये हज यात्रा का प्रबन्ध किया तथा स्वयं भी हज यात्रा की ।<sup>2</sup>

पूजा में विधि का अत्यन्त महत्व होता है । आलोच्य ग्रन्थ में अनेकत्र यह महत्व प्रतिपादित किया गया है । इस प्रकार की पूजा को सम्यक् पूजा कहा गया है ।<sup>3</sup> पाँच प्रकार के परमेष्ठी, दस प्रकार के सम्यक्, तीन प्रकार की शुद्धि प्रभावना तीर्थ में उत्पन्न सेवा भक्ति आदि गुणों को आवश्यक बताया गया है ।<sup>4</sup> आठ प्रकार के प्रभावकों का वर्णन है । ये इस प्रकार हैं—वादी, कवि, धर्म कथा कहने वाले, तपस्वी, नैमित्तिक, प्रवचनी, ,, विद्याधर एवं सुसिद्धि ।<sup>5</sup>

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 2, 25 {ए} 34

<sup>2</sup> वही, 7.227

<sup>3</sup> वही, 2 10 (ए) 4

<sup>4</sup> वही, 5.190-192

<sup>5</sup> वही, 5.195

श्रावक द्वारा सांसारिकता का निर्वाह करते हुए अधिकतम् सम्मत विशुद्धि आचरण के पालन के लिए षड् आवश्यकों का विधान है । लोक में इसे षड्कर्म कहते हैं जो कालान्तर में खटराग बन गया तथा अनावश्यक विस्तार के अर्थ में रूढ़ हो गया । वस्तुपालचरित में कई षड् आवश्यक उल्लिखित हैं । यथा—

1. छः प्रकार के आगार— राजाभियोग, गणाभियोग, बलाभियोग, सुराभियोग, कान्तारवृत्ति, गुरुनिग्रह ।<sup>1</sup>
2. छः प्रकार की श्रद्धा— जीव नित्य है, कार्यकर्ता है, भोक्ता है, निर्वाण प्राप्त करता है, मोक्ष प्राप्त करता है तथा सम्यकत्व प्राप्त करता है ।<sup>2</sup>
3. छः प्रकार की भावना — मूल, द्वार , प्रतिष्ठान, जाथार, भाजन, विधे <sup>3</sup>

जिन पूजा के पाँच चरण माने जाते हैं— देवदर्शन, अभिषेक, द्रव्यपूजा एवं भावपूजा तथा आरती ।<sup>4</sup>  
वस्तुपालचरित में प्रायः सभी प्रकार की भक्ति का स्वरूप प्राप्त होता है ।

आलोच्यग्रन्थ में राजसी, तामसी एवं सात्विकी तीन प्रकार की भक्ति बताई गई है । छद्मपूर्वक, लोकानुरंजन के लिए की जानेवाली भक्ति राजसी कहलाती है । कलुषित अन्तःकरण होने पर काषाय आदि धारण करके फल की कामना से की जाने वाली भक्ति तामसी है । जो देश, काल, क्षेत्र आदि की अपेक्षा न करके शुभ आशा से फल की इच्छा छोड़कर भक्ति की जाती है, वही सात्विक भक्ति है । यही भक्ति कल्याणकारी एवं प्रशस्त है ।<sup>5</sup>

उपर्युक्त विवेचन के आधार स्पष्ट है कि वस्तुपालचरितं जैन धर्म के विश्वास से ओतप्रोत एक धार्मिक रचना है । इसमें पूजा के स्वरूप पर पर्याप्त चर्चा एवं व्यवहार देखा जा सकता है ।

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितं, 5. 196

<sup>2</sup> वही, 5. 197

<sup>3</sup> वही, 5. 198

<sup>4</sup> नमन और पूजन , ( सुदीप जैन )

<sup>5</sup> वस्तुपालचरितं, 8. 252 - 254



# સપ્તમ અધ્યાય

શિક્ષા, શાસ્ત્રીય પરિચર્ચા ંવ  
સાહિત્ય

### शिक्षा, शस्त्रीय परिचर्चा एवं साहित्य

महामात्य वस्तुपाल का समय 13वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। वस्तुपाल एक मजे हुए कूटनीतिज्ञ एवं अद्वितीय सेनानायक के साथ-साथ साहित्य एवं कला के महान संरक्षक थे। वे और उनके भाई तेजपाल धवलक के राजा वीरधवलक के मन्त्री थे। यह स्थान अहमदाबाद जनपद में आधुनिक धौलका है।

वस्तुपाल ने अनेक विद्वानों को आश्रय दिया था। इन विद्वानों ने ऐसी अनेक रचनाएँ कीं जो तत्कालीन समाज एवं शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। वस्तुपालचरित में उल्लेख आया है कि वस्तुपाल ने तीन पुस्तकालयों ( भाण्डारों ) की स्थापना की थी। ये तीन पुस्तकालय अणहिल्लपत्तन, स्तम्भतीर्थ और भृगुकच्छतीर्थ पर थे। वस्तुपाल का व्यक्तिगत पुस्तकालय भी अत्यन्त समृद्ध था।<sup>1</sup> तीन-तीन पुस्तकालयों की स्थापना तत्कालीन शिक्षा के प्रसार का एक मापदण्ड कहे जा सकते हैं। वस्तुपाल द्वारा अपने निर्देशों के अनुसार धार्मिक एवं साहित्यिक कृतियों की रचना कराया जाना तत्कालीन विद्वानुराग एवं साहित्य निमोण का एक उदाहरण है।<sup>2</sup> वस्तुपाल चरित में तत्कालीन शिक्षा विषयक निम्नलिखित सामग्री प्राप्य है।

#### महामात्य वस्तुपाल का साहित्यिक परिवेशः

प्रस्तुत प्रसंग में उन विद्वानों का परिचय दिया जायेगा जो वस्तुपाल के सम्पर्क में आये तथा किस प्रकार उन्होंने साहित्यिक परिचर्चाओं से वस्तुपाल का मनोरंजन किया। अनेक विद्वानों ने वस्तुपाल के आग्रह पर साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत की थीं। इन कवियों तथा विद्वानों के पारस्परिक सम्बन्ध कभी तो ईर्ष्यायुक्त थे कभी सहयोगपूर्ण, परन्तु उनको एक साथ जोड़े रखनेवाले मनीषी महामात्य वस्तुपाल थे। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि इन विद्वानों को बघेल राजा वीरधवलक के समूह में नहीं गिना जाता अपितु उस राजा के मन्त्री वस्तुपाल के समूह में गिना जाता है। जबकि ये व्यक्ति प्रायः बघेल राजा धवलक की राज्य सभा में नियुक्त होते थे तथा समय-समय पर राजा द्वारा उपहार भी प्राप्त किया करते थे। परन्तु इन व्यक्तियों द्वारा राजा की प्रशंसा कियेजाने के प्रसंग बिरले ही प्राप्त होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि ये लोग मुख्य रूप से वस्तुपाल के आश्रित थे। वस्तुपाल की इस विद्वतमण्डली की गतिविधियों का अध्ययन तत्कालीन सांस्कृतिक

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 7 113

<sup>2</sup> वही, 7 347

जीवन पर तो प्रकाश डालता ही है साथ ही मध्यकाल में गुजरात की साहित्यिक एवं वैदुष्यपूर्ण परम्पराओं की जानकारी भी प्रस्तुत करता है ।

### विद्वान रचना एवं शास्त्रीय परिचर्चायें

#### सोमेश्वर :

सोमेश्वर वस्तुपाल का परमप्रिय मित्र एवं उनके द्वारा अश्रित कवियों में प्रबल था । वह गुजरात के चालुक्य राजाओं का पुरोहित था । अणहिल्लपत्तन तथा धवलक के राजदरबारों में उसका बहुत प्रभाव था । जब वस्तुपाल और तेजपाल अपनी शत्रुञ्जय यात्रा से लौट रहे थे तब उससे मिले थे और वह इनसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें राजा वीरधवलक से मिलवाया ।<sup>1</sup> अध्येय ग्रन्थ में वस्तुपाल एवं सोमेश्वर के मध्य होने वाली अनेक बौद्धिक परिचर्चाओं का उल्लेख मिलता है । एक परिचर्चा इस प्रकार है । एक बार वस्तुपाल और सोमेश्वर स्तम्भतीर्थ में विद्यमान थे उसी समय पोत से अश्वों का आयात किया जा रहा था । वस्तुपाल ने अश्वों को देखकर उसी समय निम्नलिखित समस्या प्रस्तुत की -

प्रावृट् काले पयोराशिः, कथं गर्जितवर्जितः ।

सोमेश्वर ने तत्काल उसका उत्तर इस प्रकार दिया-

अन्तःसुप्तजगन्नाथनिद्रामङ्गलमयादिव ।

वस्तुपाल ने सोमेश्वर को इस कार्य के लिए तुरन्त सोलह अश्व उपहार स्वरूप प्रदान किये । पुनः वस्तुपाल ने सोमेश्वर को एक समस्या और दी-

काकःकिं वा क्रमेलकः ।

सोमेश्वर ने श्लोक की रचना करके तुरन्त इस समस्या को पूरा कर दिया-

येनागच्छन्ममाख्यातो, येनानीतश्च मे पतिः ।

प्रथमं सखि कः पूज्यः, काकः किंवा क्रमेलकः ।।

---

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 1.223 से 233

इस श्लोक में एक सखी दूसरी सखी से पूछ रही है कि काक और क्रमेलक में से काक ने तो मेरे पति के आगमन का समाचार दिया है परन्तु क्रमेलक तो मेरे पति को लेकर आया है । अतः इन दोनों में से पहले किसकी पूजा की जानी चाहिए ? इस प्रकार सोमेश्वर की आशुबुद्धि चातुर्य से निरर्थक शब्द भी रमणीय काव्य में परिवर्तित हो गये ।<sup>1</sup>

वस्तुपाल की प्रशंसा में सोमेश्वर ने अनेक श्लोकों की रचना की । जब वस्तुपाल युद्ध में शंख को पराजित करके लौटते हैं तो सोमेश्वर निम्नलिखित श्लोक से उनका अभिनन्दन करते हैं—

श्रीवस्तुपाल ! प्रतिपक्षकाल, त्वया प्रपेदे पुरुषोत्तमत्वम् ।

तीरेऽपि वार्द्धेरकृतेऽपि मात्स्ये, रूपे पराजीयत येने शङ्खः ॥<sup>2</sup>

सोमेश्वर ने 'सुरथोत्सव' की रचना की जो मार्कण्डेय पुराण पर आधारित है । उन्होंने 'कीर्तिकौमुदी' महाकाव्य की रचना की जिसमें वस्तुपाल के महान कार्यों का वर्णन है । 'उल्लघराघव' नामक नाटक में उन्होंने रामायण की कथा का वर्णन किया है । 'कर्णामृतप्रपानामक' उपदेशात्मक पद्यों का तथा 'रामश्रतक' का भी रचयिता सोमेश्वर है । उन्होंने नेमिनाथ की मूर्ति स्थापना के अवसर पर 'आबू प्रशस्ति' की रचना की ।<sup>3</sup> 'वस्तुपाल का गिरनार लेख' भी सोमेश्वर द्वारा रचित है । 'वैद्यनाथ प्रशस्ति' सोमेश्वर की अन्तिम रचना है । यद्यपि उन्होंने 'वीरनारायण प्रशस्ति' नामक रचना भी की परन्तु उसके विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती ।

#### हरिहर :

राजशेखर ने प्रबन्धकोश के एक पूरे प्रबन्ध में हरिहर का वर्णन किया है । वस्तुपाल ने भी उसकी रचनाओं का सम्मान किया है । अतः कहा जा सकता है कि हरिहर वस्तुपाल के साहित्यिक संच में प्रमुख स्थान रखते थे । हरिहर गौड़ प्रदेश से गुजरात आये थे । राजा वीरधवल और वस्तुपाल तो बहुत प्रसन्न हुए लेकिन सोमेश्वर ने ईर्ष्यावश उनसे बात भी नहीं की । हरिहर सम्मान पाने के कारण प्रतिदिन राजसभा में

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 7. 379 से 383

<sup>2</sup> वही, 4.249

<sup>3</sup> वही, 8 ; *Literary Circle* ... P. 47-48

आने लगे थे । एक बार राजा वीरधवलक ने हरिहर से सोमेश्वर द्वारा रचित वीरनारायण प्रशस्ति के गुण-दोषों का विवेचन करने को कहा । हरिहर ने प्रतिशोध लेने के कारण उसको भोज देव द्वारा उज्जयिनी में बनवाये गये सरस्वतीकण्ठाभरण प्रासाद पर रचित बताया तथा अपनी बात सिद्ध करने के लिए उसने अपनी तीव्र स्मरण शक्ति के बल पर सही क्रम में सुना दिया और सोमेश्वर पर ग्रन्थों की चोरी का आरोप सिद्ध कर दिया । वस्तुपाल ने मध्यस्थता करके उन दोनों में मित्रता करा दी और हरिहर ने उसे ग्रन्थ को चोरी के आरोप से मुक्त कर दिया तथा राजा के सामने अपनी भूल स्वीकार कर ली ।<sup>1</sup>

वस्तुपाल ने हरिहर से नैषधीयचरित की एकमात्र पाण्डुलिपि को एक रात्रि के लिए मांग लिया तथा रात्रि में ही उसकी दूसरी प्रतिलिपि करा ली । दूसरे दिन उन्होंने उस प्रतिलिपि को संग्रह कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि यह प्रतिलिपि तो उनके संग्रहालय में पहलै से ही विद्यमान थी ।<sup>2</sup> इस प्रकार स्पष्ट है कि वस्तुपाल के साहित्यिक संघ में सकारात्मक कार्यों के साथ-साथ प्रपञ्चपूर्ण कार्यों के भी संदर्भ प्राप्त होते हैं ।

हरिहर की एक रचना 'शंखपराभवव्यायोग' की एक प्रति मुनि श्री पुण्यविजय जी को अहमदाबाद में प्राप्त हुई है जिसमें सिन्धुराज पुत्र शंख पर वस्तुपाल की विजय का वर्णन है ।<sup>3</sup> प्रबन्ध में भी उनके छुटपुट श्लोक प्राप्त होते हैं । इन श्लोकों में वीरधवल तथा वस्तुपाल की प्रशंसा की गयी है । वस्तुपाल की प्रशंसा में निम्नलिखित श्लोक दर्शनीय है :

धन्यः स वीरधवलः क्षितिकैटभारि -

र्यस्येदमद्भुतमहो महिमप्ररोहम् ।

दीप्रोष्णदीधितिसुधाकिरणप्रवीणं,

मन्त्रिद्वयं किल विलोचनतामुपैति ।।

आजन्मापि वशीकृताय सुकृतस्तोमाय यत्नान्मया,

यद्यासाद्यत कोऽपि दूषणकणः श्रीवस्तुपाल ! त्वयि ।

<sup>1</sup> लिटरेरी सर्किल ऑफ महामात्य वस्तुपाल, पृ. 53

<sup>2</sup> वही, पृ. 53-54 ; रासमाला, पृ. 348

<sup>3</sup> रासमाला, पृ. 349

यत्कल्पद्रुमपल्लवद्युतिमवष्टम्भैव कल्पद्रुमम्,

पाणिर्धिवकुरुते तवैष मनुते कोऽसु न दोषश्रितम् ॥<sup>1</sup>

'सूक्तिमुक्तावली' में हरिहर के नाम से अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि यह उन्हीं की रचना है या किसी और की ।

**नानाक :**

नानाक वीसलदेव की राज्यसभा का कवि था एवं वस्तुपाल के सम्पर्क में आया था । उसने प्रभासपट्टण में सरस्वती सदन नामक विद्यालय की स्थापना की थी । इस विद्यालय के स्थान पर ब्रह्मेश्वर के मंदिर के पास अब भी आश्विन में सरस्वती पूजा होती है । इस विद्यालय से सम्बद्ध दो प्रशस्तियाँ मिलती हैं जिनमें से एक 1328 वि.सं. की है ।<sup>2</sup> इनका भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता । परन्तु प्रशस्तियों से इनकी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है । वस्तुपाल की प्रशंसा में रचित एक श्लोक प्रासंगिक है जो कि वस्तुपाल और प्रबन्धकोश दोनों में मिलता है । प्रबन्धकोश के अनुसार यह नानाक का है लेकिन वस्तुपाल-चरितं के अनुसार यह कवि सोमेश्वर का कथन है । डॉ. भोगीलाल साण्डेसेरा के अनुसार 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' और 'उपदेशतरंगिणी' में नानाक के नाम से ही है लेकिन बाद के प्रबन्धों के अनुसार ये श्लोक सोमेश्वर का है ।

एकस्त्वं भुवनोपकारक इति श्रुत्वा सतां जल्पितं,

लज्जानम्रशिराः स्थिरातलमिदं यद्वीक्षसे बेदिम तत् ।

वाग्देवीवदनारविन्दतिलक श्रीवस्तुपालप्रभो !

पातालाद्वलिमुद्दिधीर्षुरसकृन्मार्गं ध्रुवं मृग्यासे ॥<sup>3</sup>

<sup>1</sup> वस्तुपालचरित, 6.79.80

<sup>2</sup> रासमाला, पृ. 349

<sup>3</sup> प्रबन्धकोश, पृ. 120, वस्तुपालचरित, 7.97, लिटरेरी सर्किल, पृ. 58, संदर्भ-2 ।

**यशोवीर :**

यशोवीर जाबालिपुर के चौहान राजा उदयसिंह का मंत्री था । वस्तुपाल का प्रियमित्र था । सोमेश्वर ने इन दोनों का सरस्वती के दो पुत्रों के रूप में उल्लेख किया है । हम्मीरमदमर्दन नाटक में वस्तुपाल द्वारा यशोवीर का बड़े भाई के समान आदर करना लिखा है ।<sup>1</sup>

तेजपाल द्वारा निर्मित आबू के नेमिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय यशोवीर की प्रशंसा करते हुये वस्तुपाल कहता है—

बिन्दवः श्रीयशोवीर मध्ये शून्या निरर्थकाः । सङ्घावन्तो निगद्यन्ते त्वयि केन  
पुरस्कृताः ।

यशोवीर ! लिखत्याख्यां, यावच्चन्द्रं विधिस्तव ।

न भाति भुवने ताबदाद्यमप्यक्षरद्वयम् ॥<sup>2</sup>

तब यशोवीर भी वस्तुपाल की प्रशंसा में श्लोक पढ़ता है—

श्रीमत्कर्णपरम्परागतभवत्कल्याणकीर्तिश्रुतेः ,

प्रीतानां भवदीयदर्शनविद्यो नस्माकमुत्कं मनः ।

श्रुत्यप्रत्ययिनी सशङ्कहृदयाः (सदा ऋजुतया) ह्या (स्वा) लोकविश्रम्भिणी,

दाक्षिण्यैकनिधानकेवलमियं दृष्टिः समुत्कण्ठते ॥<sup>3</sup>

वह शिल्पशास्त्र का विशेषज्ञ था और आबू के मंदिर में उसने कितनी ही त्रुटियाँ बताई थी । प्रबन्ध में प्राप्त होने वाले श्लोकों के आधार पर यशोवीर एक अच्छा कवि था लेकिन उसकी कोई भी रचना प्राप्त नहीं होती ।

<sup>1</sup> रासमाला, पृ. 349

<sup>2</sup> वस्तुपालचरित, 8.205-206 , प्रबन्धकोश, पृ. 123

<sup>3</sup> वही, 8.209, वही, पृ. 124

**सुभट :**

सुभट के विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती परन्तु सोमेश्वर ने उसको वस्तुपाल के समूह के अन्य व्यक्तियों के साथ उल्लिखित किया है । उसका लिखा हुआ दूतांगद नामक छायानाटक मिलता है ।<sup>1</sup> वस्तुपाल के साहित्यिक संग में उसके सम्मिलित होने का प्रमाण यही एकमात्र आधार है ।

**अरिसिंह :**

अरिसिंह वस्तुपाल का प्रिय कवि था तथा बघेला नरेश के राजदरबारियों में एक था । अरिसिंह जैन श्रावक होते हुये भी सुप्रसिद्ध गद्यकार और कवि मुनि अमरचन्द्र का गुरु था । ये दोनों परस्पर मिलकर काम करते थे । अरिसिंह ने अपने आश्रयदाता वस्तुपाल की प्रशंसा में 'सुकृतसंकीर्तन' नामक महाकाव्य की रचना की ।<sup>2</sup>

**विजयसेनसूरि :**

विजयसेनसूरि नागेन्द्रगण के आचार्य थे एवं वस्तुपाल के कुल क्रम से आये कुलगुरु थे ।<sup>3</sup> वस्तुपाल के द्वारा मन्दिरों में प्रतिमाओं के निर्माण के समय अनुष्ठान विजयसेनसूरि द्वारा किया गया था । उन्हीं की प्रेरणा एवं शिक्षा के आधार पर वस्तुपाल एवं तेजपाल ने मंदिर बनवाये, भण्डार स्थापित किये और तीर्थयात्रायें की । तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी का निधन हो जाने पर आचार्य विजयसूनसूरि ने सांत्वना देकर तेजपाल के दुःख को दूर किया । यद्यपि इनकी एकमात्र अपभ्रंश रचना 'रेवन्तगिरिरास' की उपलब्धि है परन्तु समसामयिक अन्य संस्कृत विद्वानों के लेखों से विदित होता है कि ये बहुत अच्छे कवि और विद्वान थे ।<sup>4</sup>

<sup>1</sup> रासमाला, पृ. 350

<sup>2</sup> जैन साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग-6, पृ. 404

<sup>3</sup> वस्तुपालचरितं, 6.4-5

<sup>4</sup> रासमाला, पृ. 350



### उदयप्रभुसूरि :

उदयप्रभुसूरि विजयसेनसूरि के प्रमुख शिष्य थे । ये वस्तुपाल से अवस्था में काफी छोटे रहे होंगे । क्योंकि इनकी शिक्षा के लिए वस्तुपाल ने सुप्रसिद्ध विद्वानों को आमंत्रित किया था । उदयप्रभुसूरि ने 'धर्माभ्युदय' महाकाव्य अथवा संघपति चरित्र की रचना की । इस कृति की एक प्रति खम्भात के जैनभण्डार में सुरक्षित है जो स्वयं वस्तुपाल की हस्तलिपि में लिखित है ।<sup>1</sup> उदयप्रभुसूरि ने सुकृत, कल्लोलिनी तथा 'वस्तुपालस्तुति' की रचना की । उन्होंने धर्मदासगणि के प्राकृत प्रकरण पर 'उपदेश माला' नामक टीका भी लिखी । उन्होंने ज्योतिष पर 'आरम्भसिद्धि' नामक प्रसिद्ध रचना की । स्तम्भतीर्थ में वस्तुपाल द्वारा बनवाई गई पौषधशाला की प्रशस्ति भी उदयप्रभुसूरि द्वारा लिखी गयी है ।<sup>2</sup> एक बड़े महोत्सव में वस्तुपाल द्वारा उदयप्रभुसूरि को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाने का उल्लेख भी प्राप्त होता है ।<sup>3</sup>

### नरचन्द्रसूरि :

नरचन्द्रसूरि देवप्रभुसूरि के शिष्य थे । देवप्रभुसूरि मलधारीगच्छ से सम्बन्धित थे । नरचन्द्रसूरि मातृपक्ष से वस्तुपाल के गुरु थे ।<sup>4</sup> इनका विजयसेनसूरि और उनके शिष्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध था । इन्होंने वस्तुपाल को न्याय, व्याकरण, साहित्य एवं जैन धर्म की शिक्षा दी थी । नरचन्द्रसूरि के पास दोनों भाई समय-समय पर धर्म के विषय में ज्ञान प्राप्ति के लिए जाते रहते थे । वस्तुपालचरितम् के पंचम प्रस्ताव के प्रारम्भ में नरचन्द्र गुरु द्वारा वस्तुपाल को धर्मदेशना दी गई है । सम्यक्त्व धर्म का विस्तार से वर्णन किया है ।

नरचन्द्रसूरि एक महान विद्वान् थे । इन्होंने श्रीधर की 'न्यायकन्दली' पर एक टिप्पण की रचना की । इन्होंने व्याकरण पर 'प्राकृतप्रबोध' लिखा, साहित्य में मुरारी कृत 'अनर्घराव' पर टिप्पण तथा ज्योतिष पर 'ज्योतिषसार' की रचना की । ज्योतिषसार जैन ज्योतिष का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है । दुर्भाग्यवश इसके केवल

<sup>1</sup> रासमात्रि, पृ. 351

<sup>2</sup> लिटरेरी साकिल, पृ. 71-72

<sup>3</sup> वस्तुपालचरित, 7.358-361

<sup>4</sup> वही, 1.92

दो अध्याय उपलब्ध हैं । वस्तुपाल के आग्रह पर नरचन्द्रसूरि ने 'कथारत्नाकर' अथवा 'कथारत्नसागर' की रचना की थी । इसमें अनेक धर्मकथाएँ हैं । जैन स्तोत्र संग्रह में नरचन्द्रसूरि का 'सर्वजिनसाधारणस्तवन' नामक मन्त्र सम्मिलित है । वस्तुपाल गिरनार अभिलेख का छन्द वाला भाग तथा वस्तुपाल प्रशस्ति की रचना भी नरचन्द्र ने ही की है । नरचन्द्र ने अपने गुरु देवप्रभसूरि के 'पाण्डवचरित' को भी पुनः सँवारा था । इन्होंने उदयप्रभसूरि के 'धर्माभ्युदय' का भी संशोधन किया था । इसके अतिरिक्त इन्होंने उत्तराध्यायन सूत्र में प्रद्युम्नसूरि के लिये कुछ पाठ की रचना की थी ।<sup>1</sup> इनके द्वारा वस्तुपाल को अपनी मृत माँ की याद आने पर शत्रुञ्जय पर्वत पर दी गई सांत्वना बहुत अधिक हृदयस्पर्शी है ।<sup>2</sup>

#### नरेन्द्रप्रभसूरि :

नरेन्द्रप्रभसूरि ने वस्तुपाल की प्रार्थना तथा अपने गुरु नरचन्द्रसूरि के कहने पर वि.सं. 1282 में 'अलंकार महोदधि' नामक ग्रन्थ रचा और उसकी वृत्ति लिखी । उनकी अन्य कृतियों में 'काकुत्स्थकेलिनाटक', 'विवेकपादप' और 'विवेककलिका' नामक दो धार्मिक निबन्ध मिलते हैं । नरेन्द्रप्रभसूरि वस्तुपाल के साथ शत्रुञ्जय यात्रा में गये थे और उन्होंने 370 पद्यों की प्रशस्ति लिखी थी ।<sup>3</sup>

#### बालचन्द्रसूरि :

ये वस्तुपाल के परममित्र थे । इनका वर्णन वस्तुपालचरित में भी आया है । बालचन्द्रसूरि का कथन है कि वे सरस्वती के अनुग्रह के कारण वस्तुपाल की प्रशस्ति के गायन में सफल हुये थे । प्रबन्धों में उल्लेख आया है कि इन्होंने वस्तुपाल की शिव से तुलना की थी<sup>4</sup> जिससे प्रसन्न होकर वस्तुपाल ने उसको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के समय हजारों द्रम्म खर्च किये थे ।<sup>4</sup> बालचन्द्र का प्रमुख ग्रन्थ 'वसन्तविलास' महाकाव्य है । वसन्तविलास वस्तुपाल का ही नाम था । ये ग्रन्थ जैत्रसिंह के निवेदन पर लिखा गया था ।

<sup>1</sup> *Literary Circle of Mahamatya Vastupal*, P. 73-74

<sup>2</sup> वस्तुपालचरित, 6.468 से 503

<sup>3</sup> जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-6, पृ. 440

<sup>4</sup> वस्तुपालचरित, 7.118 से 120

'करुपावज्रायुध' बालचन्द्र का एकांकी है जो वस्तुपाल की एक संघ यात्रा के अवसर पर तीर्थयात्रियों का मनोरंजन करने के लिए शत्रुञ्जय पर्वत पर आदिनाथ के मंदिर में प्रदर्शित किया गया था।<sup>1</sup>

#### जयसिंहसूरि :

जयसिंहसूरि ने 'हम्मीरमदमर्दन' की रचना की। इसमें गुजरात पर मुसलमानों का आक्रमण करने के लिये बनायी गई रणनीति का वर्णन है। ये नाटक स्तम्भतीर्थ पर जैत्रसिंह की उपस्थिति में मंचित किया गया था। जयसिंहसूरि ने 77 श्लोकों में 'वस्तुपालतेजपालप्रशस्ति' की रचना की।<sup>2</sup>

#### माणिक्यचन्द्रसूरि :

वस्तुपालचरितम् और जिनभद्रसूरि की प्रबन्धावली के अनुसार वस्तुपाल ने माणिक्यचन्द्रसूरि को उस समय आमंत्रित किया था जब वह स्तम्भतीर्थ के समीप ठहरा हुआ था। परन्तु व्यस्तता के कारण माणिक्यचन्द्रसूरि ने आने से मना कर दिया। वस्तुपाल ने क्रुद्ध होकर एक व्यंगात्मक पत्र के माध्यम से उसे कूपमण्डूक कहा। सूरि ने भी वस्तुपाल के लिये वैसा ही कहा। वस्तुपाल ने स्तम्भतीर्थ में स्थित उनके उपाश्रय से सभी पाण्डुलिपियों और सभी आवश्यक वस्तुओं को हटवा दिया। इसके पश्चात् वे वस्तुपाल से प्रतिवाद करने आये और कहा कि तुम्हारे जैसे प्रधान के जीवित रहते हुये भी मेरे स्थान पर यह कष्ट क्यों हुआ? वस्तुपाल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया क्योंकि पूज्य आचार्य आ नहीं रहे थे। इसके पश्चात् वस्तुपाल ने उनकी सभी वस्तुएँ लौटा दीं तथा उनका स्वागत किया।<sup>3</sup>

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यद्यपि प्रारम्भ में वस्तुपाल और माणिक्यचन्द्रसूरि के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण नहीं थे लेकिन बाद में एक दूसरे के समीप आ गये थे। इन्होंने दो गद्यकाव्य 'शान्तिनाथचरित' और 'पार्श्वनाथचरित' लिखे। काव्यप्रकाश पर टीका 'संकेत' के लिए इन्हें मुख्य रूप से प्रसिद्धि मिली।<sup>4</sup>

<sup>1</sup> जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 408

<sup>2</sup> लिटरेरी सर्किल ऑफ वस्तुपाल, पृ. 78-79

<sup>3</sup> वस्तुपालचरितम्, 7.99-111; लिटरेरी सर्किल ऑफ वस्तुपाल, पृ. 81, टिप्पणी-1,

<sup>4</sup> लिटरेरी सर्किल ऑफ वस्तुपाल, पृ. 79

वस्तुपाल ने सूरि के पुस्तकालय के लिये सभी प्रमुख शास्त्रों की एक-एक पाण्डुलिपि उपलब्ध कराई थी ।<sup>1</sup>

### अन्य कवि और विद्वान :

उपर्युक्त विद्वानों और कवियों के अतिरिक्त ऐसे अनेक कवि थे जो वस्तुपाल के सम्पर्क में आये थे और वस्तुपाल ने उन्हें आश्रय दिया था । उनमें से एक मदन था । डॉ. भण्डारकर ने दिगम्बर मदनकीर्ति से उसका साम्य स्थापित किया है ।<sup>2</sup> पुरातन प्रबन्ध संग्रह के अनुसार वस्तुपाल की सभा में मदन और हरिहर नाम के दो कवि थे जो सदैव खुली शत्रुता पर रहते थे । वस्तुपाल ने द्वारपाल को आदेश दे रखा था कि जब एक उसके साथ हो तो दूसरे को प्रवेश न दिया जाय ।<sup>3</sup> वस्तुपालचरितं में अनेक स्थानों पर वस्तुपाल की प्रशंसा में कवि मदन द्वारा रचित श्लोक प्राप्त होते हैं । संघ यात्रा के समय भी ये वस्तुपाल के साथ था । उस समय का मदन का श्लोक इस प्रकार है :

पालने राज्यलक्ष्मीणां, लालने च मनीषिणां ।

अस्तु श्री वस्तुपालस्य निरालस्यरतिर्मतिः ॥<sup>4</sup>

### वस्तुपाल का परिवार एवं साहित्य :

वस्तुपाल के परिवार के अनेक सदस्यों को काव्यात्मक उपलब्धियों का श्रेय दिया जाता है । तेजपाल ने कुछ श्लोकों की रचना की थी । वस्तुपालचरितं में आया है कि वह व्याकरण का बड़ा विद्वान था -

कुत्रापि नोपसर्गो, वर्णविकारोऽथवा निपातो वा ।

तेजःपालेन कृतोऽपूर्वा व्याकरणस्थितिलोकि ॥<sup>5</sup>

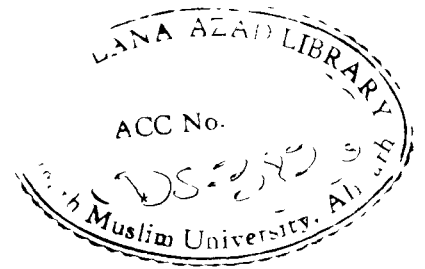
<sup>1</sup> वस्तुपालचरितं, 7.113

<sup>2</sup> लिटरेरी सर्किल ऑफ वस्तुपाल, पृ 82 , टिप्पणी-1

<sup>3</sup> वही, पृ. 82

<sup>4</sup> वस्तुपालचरित, 6.82

<sup>5</sup> वही, 3 467



तेजपाल द्वारा रचित एक श्लोक द्रष्टव्य है, जो उसने यशोवीर के आगमन के अवसर पर पढ़ा था—

लब्धं जन्मफलं कृतं कृतयुगाचारोचितं सामप्रतं, ॥<sup>1</sup>

लक्ष्मीः प्रायः फलं कुलं समभवत् श्लाघ्यं सतामप्यहो ।

श्रीमन्नेमिजिनेन्द्रमन्दिरमहोल्लासिप्रतिष्ठाक्षणे,

प्राप्तस्त्वं यदनेकनिर्मलगुणस्त्रेविधवाचस्पतिः ॥<sup>1</sup>

तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी की षड्दर्शन वेत्ताओं ने 'षडदर्शनमाला' कहकर स्तुति की है । 'कंकणकाव्य' नामक उसकी एक कृति भी प्रसिद्ध है ।<sup>2</sup> वस्तुपाल का पुत्र जैत्रसिंह अथवा जयन्तसिंह भी साहित्यकारों का आश्रयदाता था । उसने अपने पिता की मृत्यु पर एक श्लोक बोला था जो कई प्रबन्धों में दिया गया है । वस्तुपालचरितम् में भी है—

खद्योतमात्रतरला गगनान्तरालमुच्चावचाः

कति न दन्तुरयन्ति ताराः ।

एकेन तेन रजनीपतिना विनाद्य,

सर्वा दिशो मलिनमानमुद्बहन्ति ॥<sup>3</sup>

यह आश्चर्य नहीं है कि संस्कृत साहित्य एवं विद्या से ओतप्रोत वातावरण में जन्म लेनेवाला व्यक्ति साहित्य एवं उसकी चर्चा करने लगे । भले ही वह महाकाव्य न लिख सके परन्तु छुटपुट छन्द रचना तो कर ही सकता है ।

#### अज्ञात कवि एवं विद्वान् :

इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक कवि थे जो वस्तुपाल के साहित्यिक संघ में थे परन्तु उनके नाम प्राप्त नहीं होते । अनेक प्रबन्धों में उनके अंश अवश्य प्राप्त होते हैं । बहुत से भट्ट एवं आचरण थे जो अपने आश्रयदाता की प्रशंसा किया करते थे । कुछ कवि अपभ्रंश में रचना किया करते थे ।

<sup>1</sup> वस्तुपालचरितम्, 8.210

<sup>2</sup> रासमाला, पृ. 353

<sup>3</sup> वस्तुपालचरितम्, 8.580

# અષ્ટમ અધ્યાય

કલા એવ શિલ્પ

देवपूजा के लिए लिए जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, सरस्वती भवन आदि का निर्माण जैन गृहस्थों के आवश्यक कर्तव्य बताये गये हैं। द्वादशांगी जिन वाणी में 72 कलाओं एवं - 64 विद्याओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।<sup>1</sup> जैन कोशकारों ने "कला" को विज्ञान माना है तथा इसके "द्विसप्तति" भेद किये हैं। जैन धर्म में जिन मन्दिर एवं जिन प्रतिमा का अत्यधिक महत्व है। मन्दिर एवं प्रतिमा को नयनामिराम बनाने के उद्देश्य से कला का प्रयोग किया गया। विदेशी शासकों को भी पाषणों पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ और बेलबूटे आदि इतने रूचिकर लगे कि उन्होंने नये निर्माणों में उन्हें यथावत् बनवा दिया। यहाँ तक कि कई भारतीय निर्माणों को उन्होंने बाह्य परिवर्तन करके अपने पूजा स्थलों का रूप दे दिया।<sup>2</sup>

चित्रकला एवं वास्तुकला का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तुकला में अनेकधा चित्रकारिता का उपयोग किया जाता है। वास्तुविद्या और चित्रकला का परस्पर सम्बन्ध अजन्ता, एल्लोरा एवं काञ्चीपुरम आदि के मन्दिरों में देखा जा सकता है। उक्त प्रसिद्ध मन्दिर जितने स्थापत्य एवं शिल्प के कारण प्रसिद्ध है उतने ही चित्रकला के कारण।

वास्तुपाल चरित्तम में अनेक मन्दिरों एवं चैत्यों का निर्माण तथा अनेक मन्दिरों के जीर्णोद्धार कराये जाने का उल्लेख मिलता है। इन सब कार्यों के लिए कला के प्रयोग की आवश्यकता है अतः आलोच्यग्रन्थ में यत-तत्र कला के स्वरूप के सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त होते हैं। कला की उपयोगिता के सम्बन्ध में वस्तुपालचरित्तम में कहा गया है कि जिसने किसी कला का अध्ययन नहीं किया उसका जीवन अर्थहीन ही गया।<sup>3</sup>

आलोच्य ग्रन्थ में अनेक मन्दिरों के निर्माण का उल्लेख वस्तुतः वास्तुकला के विकास का एक उदाहरण है "देवपतन"<sup>4</sup> "द्वीपपत्तन"<sup>5</sup> "वेश्मदेवालय"<sup>6</sup> "चैत्य" आदि तेरहवीं शताब्दी की कला सम्पन्नता को अभिव्यक्त करते हैं।

जैन मन्दिर मानव शरीर के प्रतीक के रूप में चित्रित किये जाते हैं। सीढ़ियाँ चरण के समान होती हैं, कटि प्रदेश द्वार हैं, नाभि प्रदेश गर्भद्वार हैं, हृदय स्थल वेदिका है अथवा वेदिका पर विराजमान इष्टदेव की प्रतिमा ही हृदय है, उत्तमाङ्ग अर्थात्तः गुम्बद है, शिखर चोटी है।

मन्दिर में कम से कम तीन वेदियाँ होती चाहिए अन्यथा वह चैत्यालय बन जायेगा। वस्तुपाल के समय में भी इसी आधार पर अनेक मन्दिरों एवं चैत्यालयों का विभाजन रहा होगा। कहा गया है कि जय सिंह ने गिरिनार तीर्थ पर नेमिनाथ का चार द्वारों वाला चैत्य और सिद्धपुर में मन्दिर बनवाया था।<sup>7</sup> तेजपाल ने ग्रीष्म नगर में अजित स्वामी का मन्दिर बनवाया, बनसर में अर्हत का चैत्य बनवाया तथा दर्भावती पुरी में पार्श्वनाथ का चैत्य बनवाया है<sup>8</sup> स्वयं वस्तुपाल ने धवलकपुर में आदिनाथ का शुत्रुञ्जयावतार नाम का मन्दिर बनवाया<sup>9</sup>।

1. जैन वास्तुविद्या प्रस्तावना।

2. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर भाग -2, पृष्ठ 68

3. अधीता न कला काचिन्न च किञ्चित्कृतं तपः।

दत्तं न किञ्चित्पात्रैर्भ्यो, गतं च मधुरं वयः॥ वस्तुपालचरितं, 5.4

4. वही 2. 341

5. वही 2. 344

6. वही 2. 352

7. वही 1. 185-189

8. वही 3. 347, 348, 357, 367-368,

9. वही 3. 456

सम्भवतः वेदियों की संख्या के आधार पर ही मन्दिर एवं चैत्यों में अन्तर होता है । प्रत्येक मन्दिर में अनेक तीर्थकरों की प्रतिमायें होती हैं परन्तु उन्हें किसी एक तीर्थकर का मन्दिर कहा जाता है । वस्तुतः मन्दिरों में स्थापित प्रधान प्रतिमा के आधार पर ही मन्दिर का नाम होता है । प्रधान प्रतिमा मध्य में होती है ।

जिन प्रतिमा को एक अत्युच्च पद प्रदान किया जाता है । उसके अलंकरण के लिए विविध ऐश्वर्य सूचक वस्तुओं को प्रयोग में लाया जाता है । वस्तुपालचरितं में जिन पूजा के निमित्त बनवाये गये चैत्यों में छत्र, चामर, भृङ्गार, तोरण, आदर्श दीपिका, श्रीखण्ड का द्रव्य वर्तन, घन, सद्धातु कुण्डिकावास (वेदी) कुम्पिका, दीपमाला, घण्टे, रात्रिदीप आदि की व्यवस्था करने के निर्देश दिये गये हैं ।<sup>1</sup> प्रतिमाओं का शृङ्गार कुण्डल, हार, कंकण, अंगूठी आदि स्वर्ण आभूषणों से किये जाने का वर्णन है ।<sup>2</sup>

महामात्य वस्तुपाल द्वारा अनेक भवनों का निर्माण कराये जाने के प्रसंग उपलब्ध होते हैं । परन्तु ये भवन किस प्रकार बनाये गये हैं इनमें किस प्रकार की कला अथवा शैली का प्रयोग किया गया है इसके स्पष्ट निर्देश प्राप्त नहीं होते । अस्पष्ट रूप में कुछ चर्चा प्राप्त होती है । परन्तु उसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि किसी विशिष्ट कला का व्यवहार किया गया होगा । वस्तुपालचरितं एक ऐतिहासिक साहित्यिक रचना है अतः इसमें ऐतिहासिकता को ही वरीयता प्रदान की गयी है कला के जो विकीर्ण संकेत प्राप्त होते हैं वे अनायास ही आ गये हैं इनमें लेखक का कोई प्रयत्न नहीं दिखायी देता । वस्तुपाल द्वारा अनेक तोरण बनवाये जाने के प्रसंग प्राप्त होते हैं । परन्तु यह उल्लेख नहीं मिलता कि तोरण का स्वरूप क्या था । हज यात्रा के समय तोरण बनवाये जाने का संदर्भ उल्लेखनीय है । इसमें तोरण के दिव्य होने की बात कही गयी है तथा ये जगत के नेत्रों को आनन्द देने वाला बताया गया है और पत्थर द्वारा निर्मित होना भी बताया गया है । परन्तु इसके स्वरूप का चित्रण नहीं है । जगत के नेत्रों को आनन्द देने वाला कहना इसकी रमणीयता का मानदण्ड कहा जा सकता है । परन्तु मात्र इतना कहने से उसके कलात्मक स्वरूप का निर्धारण नहीं किया जा सकता । उक्त प्रसंग दृष्टव्य है -

धर्मचक्रपदद्वारे, तोरणं तत्र मन्त्रिणा ।

आरासनाशमनो दिव्यं, जग्न्नेत्रोत्सवप्रदम् ॥

निवेश्य द्रम्मलक्षाणि, तीणि तत्र व्ययं व्यधात् ।

यतः परस्य सनतोषकृते सन्तः कृतोद्यम् ॥<sup>3</sup>

1. वस्तुपालचरितम्, 4. 384-385

2. वही, 6. 291-292

3. वही. 7.228-229



इस तोरण की चर्चा डॉ० ज्योति प्रसाद जैन ने भी की है <sup>1</sup> प्रबन्धकोश में भी इसका वर्णन है <sup>2</sup>

इसी प्रकार अनेकों स्थानों पर तोरण बनवाये जाने के जो प्रसंग हैं उनमें विधि तथा स्वरूप की व्याख्या नहीं की गयी है <sup>3</sup> इतना अवश्य है कि तोरण बनवाने में प्रायः पत्थर का ही प्रयोग किया गया है ।

आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्त होने वाले मन्दिर और चैत्य निर्माणों में तीर्थकरों की मूर्ति स्थापना के साथ-साथ पारिवारिक व्यक्तियों की मूर्तियाँ स्थापित कराने की भी चर्चा प्राप्त होती है <sup>4</sup> यदि इन मूर्तियों की सत्यता को प्रमाणित किया जाये तो तत्कालीन ऐतिहासिक व्यक्तियों के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो सकती है । उन मूर्तियों के आधार पर व्यक्तियों के रहन - सहन, आभूषण, वेशभूषा, केश विन्यास आदि का अध्ययन करके कला के स्वरूप को पहचाना जा सकता है ।

"जैनकला" <sup>5</sup> में दिलवाड़ा के मन्दिरों की पर्याप्त जानकारी दी गई है । जिसके अनुसार एक मन्दिर में हाथी पर आरूढ़ विमल शाह और उनके वंशजों की मूर्तियाँ हैं जिन्हें उनके वंशज पृथ्वीपाल ने 1150 ई० के लगभग बनवाया था । इसी मन्दिर के सम्मुख नेमिनाथ का मन्दिर है जिसका निर्माण ढोलका के बघेलवंशी नरेश वीरधवल के मंत्रियों तेजपाल और वस्तुपाल ने सन् 1232 में कराया था । इसमें एक विशाल लम्बा - चौड़ा प्रांगण है जो चारों ओर से देवकुलों से घिरा हुआ है । प्रत्येक देवकुल में एक प्रधान मूर्ति है तथा अन्य आश्रित प्रतिमाएँ हैं । इन देवकुलों के चारों ओर दोहरे स्तम्भों की मण्डपाकार प्रदक्षिणा हैं । प्रांगण के भीतर ही हस्तिशाला है । जिसमें छः स्तम्भ हैं । तत्पश्चात् मुख्य मन्दिर का रंगमंडप है, जिसके स्तम्भ कुछ अधिक ऊँचे हैं, और प्रत्येक स्तम्भ की बनावट व कारीगरी भिन्न है । रंगशाला से आगे चलकर नवचौकी मिलती है, जिस का यह नाम उसकी छत के 9 विभागों के कारण पड़ा है इससे आगे गूढमंडप और सामने मूल गर्भगृह है, जिसमें नेमिनाथ की धातु प्रतिमा विराजमान है ।

"रासमाला" <sup>6</sup> में वर्णन है "सम्पूर्ण देवालय सफेद संगमरमर का बना हुआ है और इसका प्रत्येक भाग कुराई के बारीक काम से सुसज्जित है । यह कुराई का काम इतनी बारीकी का है कि देखते ही एक बार तो ऐसा भ्रम होता है मानों यह सब कुछ मोम का ढला हुआ तो नहीं है।"

मिस्टर फर्म्युसन ने इसी मन्दिर के लिए लिखा है इस सफेद संगमरमर के पत्थर में फीतों में जितनी बारीक जगह में हिन्दू कलाकारों ने अपने अथक परिश्रम में जो कारीगरी दिखलाई है उसको कितना ही परिश्रम और समय व्यतीत करके मैं कागज पर नहीं उतार सका ।" <sup>7</sup>

1. प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएँ पृ०- 236

2. प्रबन्धकोश, पृ० 119

3. वस्तुपालचरितम्, 3.367-368, 6. 708, 3.376

4. वही, 3.336-368, 6.705-707

5. जैन कला, पृ० 334-335

6. रासमाला, पृ० 332

7. वही पृ० 221 निम्नलिखित

सम्भवतः वस्तुपाल चरितम् में इसी मन्दिर के निर्माण के विषय में अष्टम प्रस्ताव में विसृत चर्चा है लेकिन इसकी निर्माण विधि के रूप में कुछ नहीं कहा गया है ।<sup>1</sup> अन्य स्रोतों के आधार पर ही इसकी जानकारी प्रस्तुत की गयी है ।

अन्यत्र भी पारिवारिक सदस्यों की मूर्तियों की स्थापना किया जाना उल्लिखित है । इस मन्दिर में भी हाथी तथा अश्व दोनों पर स्थित मूर्तियाँ बनवाये जाने का प्रसंग प्राप्त होता है ।

तन्मण्डपे चण्डपसंज्ञितस्य, महत्प्रमाणप्रमितां विधाय ।

मूर्ति तथा वीरजिनेन्द्र बिम्बमथाम्बिका मूर्तिमसावकार्षीत् ॥

तत्र गर्भगृहद्वारदक्षिणोत्तरपक्षयोः ।

स्वः च स्वमनुजं चैष, गजारूढमतिष्ठिपत् ॥

ललितादेवीश्रोयः-कृते च तस्मै पक्षके वामे ।

पूर्वजमूर्तिसमेतं, सम्मेतं कारयामास ॥

सौख्यलतासुकृतायाष्टापदमथ तस्य दक्षिणे भागे ।

निजजनीनिजभगिनीमूर्तियुतं निर्ममे सैषः ॥

प्रसादत्रितयस्यास्य, जगात्त्रितयचित्रकृत् ।

तोरणात्रितयं चक्रे, स विद्यात्रितयाश्रयः ॥

वस्तुपालविहारस्य, पृष्ठेऽनुत्तरसन्निभम् ।

कपार्द्धि, यक्षाष्टतनमकारयदयं कृती ॥

मातुर्युगादि देवस्य, मरुदेव्या निकेतने ।

गजस्य मूर्तिं तत्रैव, मातुर्भक्तः स तेनिवान् ॥

तोरणत्रयमातेने, तेनेन्दुविशदाशमभिः ।

त्रिद्वारमण्डपद्वारगतं श्री नेमिवेशमनि ॥

द्वारं यत्किल दक्षिणामनुगतं यच्च प्रतीच्यां स्थितं,

यत्कौबेरदिगाश्रितं च भवने श्रीनेमिनाथप्रभोः ।

कामं मण्डयाति सम तानि सचिवोत्तंसः सम्मैस्तोरणैः

दृष्टिस्तद्विभवं विभाव्य जगतो नान्यत्र विश्राम्यति ॥

त्रिके श्रीनेमिचैत्यस्य, दक्षिणोत्तरपक्षयोः ।

पितुः पितामहस्यापि, मूर्त्तिं वाजिस्थिते व्यधान् ॥<sup>1</sup>

वस्तुपाल के द्वारा ललितासर बनवाया जाना बताया गया है जो कि देदीप्यमान जल से युक्त था तथा 'स्वच्छ हंसों की पंक्तियों से युक्त था और जो लक्ष्मी युक्त मानसरोवर का भ्रम कराता था -

मत्त्वैतत्पुरतः पुरस्य ललितादेवीप्रियाश्रेयसे,

चक्रेऽसौ ललितासरोऽतिविपुलं श्रीवस्तुपालः कृती ।

स्फुर्जद्वारिविराजितं गतमलं हंसालिसंशोभितं,

यद् दृष्ट्वा जनमानसे भ्रममहो श्रीमानसस्याभवत् ॥<sup>2</sup>

तोरण और मन्दिर पाषाण के ही बनाये जाने बताये गये हैं - जबकि प्रतिमा पाषाण एवं धातु दोनों प्रकार से निर्मित बतायी गयी हैं । मूर्तियों के उपदान के विषय में अधोलिखित कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

मम्माणिखमिनत्येन्दुकान्तिकान्ताश्मनिर्मितम् ।

श्रीपार्श्वप्रतिमां प्रौढां तत्र चैत्ये न्याधादयम् ॥<sup>3</sup>

× × ×

चैत्येऽथाहडदेवस्य निर्मिते मुखमण्डपे ।

न्यधात् श्रीनेमिनाथस्य, मूर्त्तिं धातुमयीमसौ ॥<sup>4</sup>

राजन् मूर्तिरियं देवी, वज्ररत्नमयी पुनः ।

नैकाब्धि कोटिकोटिभ्यः पूर्वमिन्द्रेण निर्मिता ॥<sup>5</sup>

× × ×

कषपट्टाश्मनोऽरिष्टनेमिबिम्बं विधाय सः ।

तच्चैत्यहेतवेऽरिष्टशतध्वंसि वृहत्तमम् ॥<sup>6</sup>

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रीतिमा निर्माण में वैविध्य लाने के लिए विभिन्न द्रव्यों का प्रयोग किया जाता था ।

जैन सम्प्रदाय में वास्तुविद्या एक विकसित कला के रूप में मानी जाती है । वस्तुपालचरितं में भी इसके महत्व को प्रतिपादित करने के लिए अर्बुदाचल पर निर्मित नेमिनाथ के मन्दिर के विषय में तेजपाल की चिन्ता को देखा जा सकता है । मन्दिर निर्माण पूर्ण होने के पश्चात् भी तेजपाल विद्यावाचस्पति मशोवीर से प्रसाद के गुण-दोषों के विवेचन करने का निवेदन करता है ।<sup>7</sup>

1. वस्तुपालचरितम् 6. 704-713

2. वही, 6. 684

3. वही 6. 740

4. वही 7. 72

5. वही 2. 131

6. वही 8. 112

7. वही. 8. 212

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वस्तुपालनचरितं में यदि कला का अध्ययन किया जाये तो मन्दिर एवं भवन निर्माण ही मुख्य रूप से अध्येय हो सकते हैं । यह वास्तुकला के अन्तर्गत की बातें हैं । अतः कला के अन्तर्गत वास्तुकला का ही अध्ययन किया जा सकता है । चित्रकला आदि के विषय में कोई विशिष्ट जानकारी प्राप्त नहीं होती इसी प्रकार अन्य ललित कलाओं में मूर्तिकला भी उल्लेखनीय है । वास्तुकला का कोई सैद्धान्तिक पक्ष आलोच्य ग्रन्थ में प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

### उपसंहार

वस्तुपालचरितम् 15वीं शताब्दी में लिखित एक बृहद् ऐतिहासिक महाकाव्य है । इसमें लगभग 5000 श्लोक हैं जो आठ प्रस्तावों में विभक्त हैं । प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध के माध्यम से बृहद् महाकाव्य का विषय वस्तु के अनुसार वर्गीकरण करके आठ अध्यायों में अध्ययन किया गया है । उस महाकाव्य का नायक वस्तुपाल जैन हैं, जबकि उसका आश्रयदाता हिन्दू धर्म का अनुयायी है । दोनों के धार्मिक सम्बन्ध न केवल साहिष्णु हैं अपितु सम्मानजक भी हैं । इस प्रसंग में तत्कालीन जैन एवं हिन्दुओं के सम्बन्धों की रूपरेखा जानना आवश्यक था । अतः प्रथम अध्याय में तेरहवीं शताब्दी के इन दो धर्मों के सम्बन्धों के विषय में प्रकाश डाला गया है ।

वस्तुपाल एक महान सेनानायक तथा धर्मपरायण व्यक्ति होने के साथ-साथ अनुपम साहित्यिक अभि रूचि के व्यक्ति थे । यही नहीं वह स्वयं एक महान साहित्यकार थे तथा अनेक साहित्यकार उनके संरक्षण में रचनायें किया करते थे । अनेक लेखकों ने वस्तुपाल को अपने ग्रन्थों का नायक बनाया है । द्वितीय अध्याय में वस्तुपाल को उद्देश्य करके लिखे गये साहित्य का परिचय दिया गया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों अध्याय एक प्रकार से प्रस्तुत प्रबन्ध की भूमिका कहे जा सकते हैं । भारत वर्ष में विचारों की विविधता उसकी चिन्तन समृद्धि का द्योतक है । जैन धर्म भी इसका अपवाद नहीं था । जैन धर्म में भी अनेक सम्प्रदाय थे । तृतीय अध्याय में इन्हीं सम्प्रदायों के आलोक में वस्तुपालचरितं का अध्ययन किया गया है ।

जिन-वर्ण व्यवस्था अपेक्षाकृत सरल थी उसका विभाग कर्म पर था जिन समाज में श्रावक और श्रमण का विशेष महत्व था । चतुर्थ अध्याय में वस्तुपालचरितम् में प्राप्त होने वाली इसी संघ व्यवस्था का अध्ययन है ।

साहित्य समाज का दर्पण होता है किसी देश अथवा काल के साहित्य का अनुशीलन करके तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की जानकारी प्राप्त की जा सकती है । वस्तुपालचरितं में भी उस समय के समाज की झाँकी देखी जा सकती है । पञ्चम अध्याय में इसी दृष्टि से आलोच्यग्रन्थ का सामाजिक अध्ययन किया गया है । यह अध्ययन समाज के रीतिरिवाजों, परम्पराओं एवं मान्यताओं का स्थालीपुलाक न्याय से चित्रण करता है ।

मन्दिर पूजा जैन परम्पराओं में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है । परिग्रह को छोड़ने के लिए विरक्ति आवश्यक है । तथा मन्दिर इस विरक्ति में विशिष्ट भूमिका का निवाह करते हैं । आलोच्य ग्रन्थ में अनेक मन्दिरों की स्थापना एवं निर्माण की चर्चा हुई है । षष्ठ अध्याय में इन्हीं मन्दिरों की विवेचना की गयी है ।

वस्तुपाल स्वयं विद्वान तथा विद्वानों के संरक्षक थे । उनकी विद्वत मण्डली में अनेक लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों की उपस्थिति थी । सप्तम् अध्याय में इस विद्वत मण्डली एवं उसके साहित्यिक योगदान की चर्चा की गयी है ।

मन्दिर ध्यान को एकाग्र करने के स्थल होते हैं तथा प्रतिमायें प्रेरक होती हैं । इन प्रतिमाओं के नयनाभिराम होने से उनकी उपादेयता में वृद्धि होती है । यही कारण है कि मन्दिरों एवं भवनों के माध्यम से जैन कला का अत्यधिक विकास हुआ है । अन्तिम अष्टम अध्याय में वस्तुपालचरितम् में प्राप्त होने वाले कला के सूत्रों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है ।

वस्तुतः वस्तुपालचरितम् एक समृद्ध रचना है । आकार, साहित्यिकता, ऐतिहासिकता कलात्मकता आदि विभिन्न दृष्टियों से इसका स्वतंत्र अध्ययन किया जा सकता है । प्रस्तुत लघु शोध इस दिशा में एक प्रारम्भ है । इस ग्रन्थ पर विस्तृत शोध किये जाने की असीम सम्भावनायें विद्यमान हैं ।

मूल ग्रन्थ

निजहर्षगणि, श्री वस्तुपाल चरितम्, श्री क्षन्तिसूरि जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक 5, वीर विजय का उपाश्रय, अहमदाबाद,

1941

आनु स्राङ्गिक ग्रन्थ

आदिपुराण, सम्पा० पन्ना लाल जैन, भारतीय ज्ञान पीठ वाराणसी, 1963-64

उत्तराध्ययन सूत्रम्, सम्पा० जर्ल कार्पेन्टर, अजय बुक सर्विस, नयी दिल्ली, 1980

जिनप्रभसूरि, विविधतीर्थकल्प, सम्पा० जिन विजय सिंधी जैन ज्ञानपीठ, शान्ति निकेतन, 1934

जिनसेन, हरिवंश पुराण, सम्पा० एण्ड अनु० पन्ना लाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली, 1978

यजुर्वेद , सम्पा० शिवदत्त शर्मा, बम्बई , 1950

राजशेखर सूरि, प्रबन्धकोश, सम्पा० जिन विजय, सिंधी जैन, ज्ञानपीठ शान्तिनिकेतन, 1935

वेदव्यास, भागवत पुराण, गोकुल राम , मुंबई, 1996 वि०

वेदव्यास, महाभारत, अनु० पं० रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय, "राम" पो० गीता प्रेस गौरखपुर, 2025 वि०

आधुनिक - ग्रन्थ

अवध बिहारी पाण्डेय , पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, गौतम ब्रादर्स, कानपुर, 1954

अंबालाल शाह, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-5,

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थापक जेनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी-5, 1969

अलैंकजैण्डर किन्लॉक फार्बस, रासमाला, प्रथम भाग, उत्तरार्द्ध , अनु० एवं सम्पा० श्री गोपाल नारायण बहुरा,

एम०ए०, 1958

डॉ० आदित्य प्रचाण्डिया "दिति", जैन हिन्दी पूजा काव्य, जैन शोध अकादमी अलीगढ़, 1987

कान्तिसागर, जैन कला, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, 1960

केलाश चन्द्र जैन, साहित्य का इतिहास, गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थ माला, वाराणसी , 2489 वि०

कैलाश चन्द्र शास्त्री, जैन धर्म, भारतीय दिगम्बर जैन संघ, 1966

गुलाबचन्द्र चौधरी, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-6,

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जैनाश्रम, हिन्दी यूनिवर्सिटी, वाराणसी-5, 1973

गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1951

ज्योतिप्रसाद जैन, प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली, 1975

जगदीश चन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, 1961

जगदीश चन्द्र जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, 1965

झिनकू यादव, जैन धर्म की ऐतिहासिक रूपरेखा, इण्डिक अकादमी दिल्ली 1981

टॉड, राजस्थान का इतिहास, अनु० तथा सम्पा० देवी लाल पालीवाल मंगल प्रकाश जयपुर, 1963

नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1962

नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली, 1971

डॉ० प्रेमसागर जैन, जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1963

बिरधी लाल सेठी, जैन मूर्ति पूजा में व्याप्त विकृतियाँ, जयपुर, 1979

मोहन चन्द्र, जैन संस्कृत महाकाव्यों में भारतीय समाज, दिल्ली, 1989

मोहन लाल मेहता, जैन आचार, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी-5, 1966

मोहन लाल मेहता व प्रो० हीरा लाल र० कापड़िया, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-4, पार्श्वनाथ विद्याश्रम

शोध संस्थान जैनारम, हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी-5, 1968

राधा कुमुद मुकर्जी, हिन्दू सभ्यता, अनु० श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली,

1958

श्री चन्द्र जैन, जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, रोशन लाल जैन एण्ड संस, जयपुर, 1971

हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1962

हीरा लाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 1962

पं० सुखलाल, जैनधर्म का प्राण, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली, 1965

सुदीप जैन, नमन और पूजन, परोपकार ट्रस्ट, कलकत्ता, 1996

सुदीप जैन, जैन वास्तुविद्या, परोपकार ट्रस्ट, कलकत्ता, 1995



Bhogilal J. Sandesara.

Literary Circle of Mahamatya Vastupala & Its Contribution  
to Sanskrit Literature Singhi Jain Sastra Sikshapith  
Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.

1953

B.C. Bhattacharya

The Jaina Iconography

Motilal Banarsidass, Delhi.

1974

Edited by Dr. R.C. Dwivedi

Contribution of Jainism to Indian Culture

Motilal Banarsidas, Varanasi.

1975

Fergusson James

History of Indian and Eastern Architecture,

John Marry, London.

1910

पत्र - पत्रिकायें

Indian Antiquary, Volum 9

प्राकृत विद्या भाग-VI, IX